

९१ श्रीकृष्णाय नमः ॥
श्री पं० जयदेवकविवरचितम्—

श्रीगीतगोविन्दम्

राधाविनोदकाव्यञ्च ।



तच्च

श्री मोरेश्वरराव देशमुख विरचित

भाषा टीका समलंकृतम् ।



प्रकाशकः—

ठाकुरप्रसाद एण्ड संस बुक्सेलर,

राजादरवाजा, कचौड़ीगली,

वाराणसी ।

मूल्य १)२५

❀ श्री कृष्णाय नमः ❀

श्री पं० जयदेवकविवरिचितम्—

* श्रीगीतगोविन्दम् *

राधाविनोदकाव्यञ्च ।



तच्च--

पण्डित राजाराम पाठक

कृत भाषाटीकया समलंकृतम् ।



—:~:—

प्रकाशकः—

ठाकुरप्रसाद एराड सन्स बुकसेलर,

राजादरवाजा, ब्राह्म-कचौड़ोगली

वाराणसी ।

मूल्यम् १।)

श्रीगीतगोविन्द की विषय सूची

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
मङ्गलाचरण	१	देशवराडिरागे रूपकताले अष्टपदी	४१
वसन्ततिलकावृत्तम्	२	गुर्जररागे एकतालिताले अष्टपदी	४४
द्रुतविलम्बितेन	॥	गुणकरी रागेण रूपकताले अष्टपदी	४९
शार्दूल विक्रीडितेन	॥	गौडमालव रागे यति ताले अष्टपदी	५३
मालव रागे रूपकताले अष्टपदी	३	वसन्तरागे एकतालिताले अष्टपदी	५६
गुर्जररागे प्रतिमंठताले अष्टपदी	७	गुर्जररागे एकतालिताले अष्टपदी	५९
वरन्तरागे रूपकताले अष्टपदी	१०	देशाङ्करागे रूपकताले अष्टपदी	६२
रामकलिरागे रूपकताले-अष्टपदी	१४	गुर्जररागे रूपकताले अष्टपदी	७०
गुर्जररागे रूपकताले अष्टपदी	१९	देशवराडिरागे अडवताले अष्टपदी	७३
मालवरागे एकतालि ताले अष्टपदी	२२	वसन्तरागे रूपकताले अष्टपदी	८१
गुर्जररागे प्रतिमण्ठताले अष्टपदी	२७	वराटिरागे अडवताले अष्टपदी	८५
कर्नाटकरागे एकतालिताले अष्टपदी	३३	वराडीरागे रूपकताले अष्टपदी	८८
देशाख्यरागे एकतालिताले अष्टपदी	३६	विभासरागे एकतालिताले अष्टपदी	९३
		राधाविनोद काव्यम्	१०६

❀ इति ❀

श्री राधाकृष्णाभ्यां नमः ।

अथ श्री गीतगोविन्दम्

—:❀:—

प्रथमः सर्गः १ ।

मेघैर्मेंदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमै-
नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय ॥
इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं
राधामाधवयोर्ययन्ति यमुनाकूले रहः केलयः ॥१॥

भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनकी मित्रमण्डली ब्रजराज के साथ वृन्दावन की मनोरम छटा देखते-देखते कुछ दूर निकल गई । सहसा गगन मण्डल मेघों से आच्छादित हो गया । उस समय तमाम वृक्षों की सघन पंक्तियों से वनस्थली काली-काली दिखाई देने लगी । नन्द ने सोचाः—सायंकाल होना ही चाहता है । जंगल का मामला है कृष्ण रात में भयभीत हो जायँगे—इसलिये इन्हें पहले से ही घर पहुँचा देना ठीक होगा । उन्होंने कृष्ण के ऊपर अधिक स्नेह रखने वाली राधा से कहा—तुम जाओ और इन्हें भी साथ में ले जाकर घर पहुँचा देना । नन्द की आज्ञा मिलते ही राधा कृष्ण के साथ चली । कालिन्दी का

२

श्रीगीतगोविन्दम्—

[भाषाटीका-

तट, सघन कुञ्जों से अलंकृत बनपथ तथा सुखदायी एकान्त इन सुविधाओं से परम प्रसन्न कौतुकी श्रीकृष्ण की प्रेममूर्ति राधा के साथ सम्पन्न क्रीड़ाये संसार में अपनी समता नहीं रखती ॥१॥

वसन्ततिलकावृतम् ।

वाग्देवताचरितचित्रितचित्तसद्भापद्मावतीचरणचारणचक्रवर्ती ॥ श्रीवासुदेवरतिकेलिकथासमेतमेतं करोति जयदेवकविः प्रबन्धम् ॥ २ ॥

श्री सरस्वती की अद्भुत लीलाओं से अलंकृत हृदय तथा श्री राधा के चरण सेवकों में सर्व प्रधान श्रीजयदेव कवि, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की प्रेम लीलाओं से परिपूर्ण इस गीत गोविन्द नामक प्रबन्ध का निर्माण करते हैं ॥ २ ॥

द्रुतविलम्बितेन ।

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकलासु कुतूहलम् ॥ मधुरकोमलकान्तपदावलिं शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम् ॥ ३ ॥

हे भक्तजनों ! यदि श्रीकृष्णचन्द्रजी का ध्यान करके अपना हृदय शीतल करना चाहो और वृन्दावनविहारी की रासलीला व कानन-क्रीड़ा सुनने की इच्छा करो तो जयदेव कविराज विरचित गीतगोविन्द नामक पुस्तक का पाठ श्रवण करो ॥ ३ ॥

शर्दूलविक्रीडितेन ।

वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः संदर्भशुद्धिं गिरां जानीते जयदेव एव शरणः श्लाघ्यो दुरुहद्रुतेः ॥

समेतम्]

प्रथमः सर्गः

३

शृङ्गारोत्तरसत्प्रमेयरचनैराचार्यगोवर्धन—

स्पद्धी कोऽपि न विश्रुतःश्रुतिधरोधोयीकविःक्षमापतिः

कवि उमापतिधरजी वाक्यविन्यास में श्रेष्ठ थे, शरण कवि दुरुह रचना में प्रसिद्ध थे, श्रीगोवर्धनाचार्य जी शृंगार रस पूर्ण कविता करने से मान को प्राप्त हुए थे, इसी भाँति धोयी कविराज को सुनने मात्र से ही याद हो जाता था, किन्तु श्री जयदेव कविराज विशुद्ध रचना के लिये आदरणीय हैं ॥ ४ ॥

मालवरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ १ ॥

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम् ॥

विहितवहित्रचरित्रमखेम् ॥

केशव धृतमीनशरीर जय जगदीशहरे ॥ध्रुव०॥१॥

हे भगवन् ! प्रलयके समय आपने बिना परिश्रम समुद्र-तरण के लिये नौका की तरह चेष्टित मीन रूप धारण करके वेद-शास्त्र की रक्षा की थी । हे मीन रूपधारी भगवन् ! तुम्हारी जय हो, जय हो, जय हो ॥ १ ॥

क्षितिरतिवितुलरे तव तिष्ठति पृष्ठे ॥

धरणिधरणकिणचक्रगरिष्ठे ॥

केशव धृतकञ्चपरूप जय जगदीश हरे ॥ २ ॥

हे भगवन् ! आपने अपने अति विपुलतर पीठ पर पृथ्वी को धारण किया था, इसी कारण आपके पृष्ठ पर व्रण (घाव) का चिन्ह है, हे जगदीश ! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ २ ॥

वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना ।

शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना ॥

केशव ! धृतसूकररूप जय जगदीश हरे ॥ ३ ॥

हे केशव ! आपने सूकर रूप धारण करके प्रलय के जल से पृथ्वी का निज दाँतों से उद्धार किया था । इसी कारण आपके दाँतों में प्राप्त पृथ्वी कलङ्क रेखा के सदृश शोभायमान हुई थी, हे जगदीश ! तुम्हारी जय हो, जय हो, जय हो ॥ ३ ॥

तव करकमलवरे नखमद्भुतशृङ्गम् ।

दलितहिरण्यकशिपुतनुभृङ्गम् ।

केशव ! धृत नरहरिरूप जय जगदीश हरे ॥ ४ ॥

हे केशव ! आपने नृसिंहरूप धारण कर श्रेष्ठ करकमल पर आश्चर्य पैदा करनेवाले अद्भुत शृङ्गरूप नखों को धारण किया और उन्हीं नखों से दैत्यराज हिरण्यकशिपु का विनाश किया, इस कारण हे भक्तवत्सल भगवन् ! तुम्हारी सदैव जय हो, जय हो, जय हो ॥ ४ ॥

छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन ।

पदनखनीरजनितजनपावन ।

हे केशव ! धृत वामनरूप जय जगदीशहरे ॥ ५ ॥

हे केशव ! आपने वामन रूप धारण करके बलि को छला था और आपही अपने चरणकमलों से निकले हुए जल से समस्त लोगों को पवित्र कर रहे हैं, हे भक्तजन रक्षक ! तुम्हारी जय हो, जय हो, जय हो ॥ ५ ॥

समेतम्]

प्रथमः सर्गः

५

क्षत्रियरुधिरमये जगदपगतपापम् ।

स्नपयसि पयसि शमितभवतापम् ॥

केशव ! धृतभृगुपतिरूप जय जगदीश हरे ॥ ६ ॥

हे परशुरामरूप धारण करने वाले भगवन् ! आपने परशुराम रूप धारण कर कठोरात्मा क्षत्रियों का विनाश करके उन्हीं के रुधिर से पृथ्वी को तृप्त किया था, हे भगवन् ! हे जगदीश ! आपकी जय हो ३ ॥ ६ ॥

वितरसि दिक्षु रणे दिक्पतिकमनीयम् ।

दशमुखमौलिबलिं रमणीयम् ॥

केशव ! धृतरामशरीर जय जगदीश हरे ॥ ७ ॥

हे भगवन् ! आपने समस्त लोगों पर दया करनेके हेतु रामरूप धारण करके सभी देवताओं को प्रसन्न करने के लिये राक्षसराज रावण का संहार किया था, हे भगवन् ! तुम्हारी जय हो ३ ॥ ७ ॥

बहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभम् ।

हलहतिभीतिमिलितयमुनाभम् ॥

केशव ! धृतहलधररूप जय जगदीश हरे ॥ ८ ॥

हे भगवन् ! जब आपने हलधर रूप धारण करके मेघ सदृश नील वस्त्र धारण किया, तब आपके शुभाग में वह नीलवसन हल-भीता यमुना का स्वरूप शोभायमान हुआ था, हे जगदीश ! जयहो जय हो ३ ॥ ८ ॥

निन्दसि यज्ञविधेरहहश्रुतिजातम् ।

सदयहृदयदर्शितपशुघातम् ॥

केशव ! धृत बुद्धशरीर जय जगदीश हरे ॥६॥

हे भगवन् ! आपने ही जीवों पर दया करने के हेतु बुद्ध रूप धारण करके, पृथ्वी में जितने यज्ञ पशु-हिंसा प्रधान हुआ करते थे उनकी निन्दा की, हे बुद्धरूपधारी भगवन् ! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ ६ ॥

म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालम् ।

धूमकेतुमिव किमपि करालम् ॥

केशव ! धृतकल्किशरीर जय जगदीशहरे ॥१०॥

हे भगवन् ! आपने दुष्ट म्लेच्छों के नाश के हेतु धूमकेतु स्वरूप खड्ग धारण किया था । हे भगवन् ! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ १० ॥

श्रीजयदेवकवेरिदमुदितमुदारम् ।

शृणु सुखदं शुभदं भवसारम् ॥

केशवधृतदशविधरूप जय जगदीश हरे ॥ ११ ॥

श्री जयदेव-रचित यह स्तोत्र सब स्तोत्रों में श्रेष्ठ है । हे भक्तगण ! इसको भक्ति भाव युक्त प्रीति पूर्वक आनन्द से श्रवण करो । हे दश अवतारों को धारण करने वाले भक्तजन दयालो ! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ ११ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे प्रथमः प्रबन्धः ॥ १ ॥

वेदानुद्धरते जगन्ति वहते भूगोलमुद्बिभ्रते

समेतम्]

द्वितीयः सर्गः

७

दैत्यं दारयते बलिं क्षलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ।
 पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते
 म्लेच्छान्मूर्च्छयते दशाकृतिकृतेकृष्णाय तुभ्यं नमः १

हे भगवन् ! आपने मीनरूप धारण कर प्रलय के जल से वेद शास्त्र की रक्षा की, कूर्मरूप धारण कर पृथ्वी को पीठ पर वहन किया, वाराह रूप धारण कर निज दन्तों से पृथ्वी को पानी में से उठाया, वृसिंह रूप धारण करके हिरण्यकशिपु का नाश किया, वासन रूप धारण कर बलिराज का छलन किया, परशुराम रूप धारण करके क्षत्रियों का नाश किया, राम रूप धारण करके रावण का हनन किया, हलायुध रूप धारण करके यमुना को खींचा, बुद्धरूप धारण करके अहिंसा धर्म को प्रकाशित किया और अव कल्कि रूप धारण करके महाभ्रष्ट म्लेच्छ लोगों का विनाश करेंगे । अतः हे दश विधरूप धारण करने वाले ! आपके चरण कमलों में मेरा नित्य प्रति साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम है ॥ १ ॥

गुर्जररागे प्रतिमंठताले अष्टपदी ॥ २ ॥

श्रितकमलाकुचमण्डल धृतकुण्डल ए ।

कलितललितवनमाल जय जय देव हरे ध्रु० ॥१॥

हे भगवन् ! आप लक्ष्मी देवी के सुन्दर वक्षस्थल से क्रीड़ा करते हैं, आप कर्णभूषण से शोभायमान हैं, आपके कण्ठ में वनमाला अत्यन्त सुशोभित हो रही है, हे कमलाकान्त ! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ १ ॥

दिनमणिमण्डलमण्डन भवखण्डन ए ।

मुनिजनमानसहंस जय जय देव हरे ॥ २ ॥

हे नारायण ! सूर्यमण्डल के भूषणस्वरूप समस्त लोगों को गति, भक्ति और मुक्ति देने वाले आप सन्त-भक्तजनों के हृदय में हंस सदृश विराजमान रहते हो । इससे हे भगवन् ! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ २ ॥

कालियविषधरगंजन जनरंजन ए ।

यदुकुलनलिनदिनेश जय जय देव हरे ॥ ३ ॥

हे भगवन् ! आपने कालिय नाग का दमन किया था और आपही भक्तजनों की मनोकामना को परिपूर्ण करने वाले हैं । यदुवंशरूप कमल के प्रकाशक सूर्य स्वरूप आपही हैं । हे यदुकुल प्रकाशक ! आपकी जय हो ॥ ३ ॥

मधुमुरनरकविनाशन गरुडासन ए ।

सुरकुलकेलिनिदान जय जय देव हरे ॥ ४ ॥

हे भगवन् ! आपने मधु दैत्य और मुर नामक असुर का विनाश किया था, नरकस्थित पापियों को आप मुक्ति पद देते हैं । गरुड़ जिनके वाहन हैं ऐसे हे गरुडासन भगवन् ! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ ४ ॥

अमलकमलदललोचन भवमोचन ए ।

त्रिभुवनभवननिधान जय जय देव हरे ॥ ५ ॥

हे भगवन् ! आपके नेत्र, कमल के समान हैं, भवपाश से छुड़ाने वाले आपही हैं, हे नारायण ! आपके असंख्य नाम हैं,

समेतम्]

द्वितीयः सर्गः

९

जिन नामों के उच्चारण मात्र से भक्तिप्रधान जीवों का हृदय शुद्ध होता है है । हे भक्तिप्रद ! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥५॥

जनकसुताकृतभूषण जितदूषण ए ।

समरशमितदशकंठ जय जय देव हरे ॥ ६ ॥

हे भगवन् ! आपने ही मिथिलेश नन्दिनी सीता का अङ्ग विभूषित किया था और आपही ने निर्दय पापी खर-दूषण और पाप-रूप लंकापति रावण का विध्वंस किया था, हे परमपुरुष ! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ ६ ॥

अभिनवजलधरसुन्दर धृतमन्दर ए ।

श्रीमुखचन्द्रचकोर जय जय देव हरे ॥ ७ ॥

हे भगवन् ! आपका स्वरूप नूतन मेघ के तुल्य है । गोवर्धन पर्वत को कनिष्ठिका पर धारण करके ब्रजपुरी की रक्षा आपने की । हे लक्ष्मी के मुखरूप चन्द्रमा के चकोर ! आपका नाम धन्य है, हे परमेश ! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥७॥

तव चरणे प्रणता वयमिति भावय ए ।

कुरु कुशलं प्रणतेषु जय जय देव हरे ॥ ८ ॥

हे भगवन् ! हमलोग आपके चरणकमलों में साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं । आप हमलोगों का मंगल करें, हे दीनदयाल ! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ ८ ॥

श्रीजयदेवकवेरिदं कुरुते मुदन् ।

मङ्गलमुज्ज्वलगीतं जय जय देव हरे ॥ ९ ॥

१०

श्रीगीतगोविन्दम्—

[भाषाटीका-

श्री कविवर जयदेव का यह उज्ज्वल गीत समस्त संसारी लोगों को मंगलप्रद है । अतः हे परब्रह्म ! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ ६ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे द्वितीयः प्रबन्धः ॥ २ ॥

पद्मापयोधरतटीपरिरम्भलग्न-

काश्मीरमुद्रितमुरो मधुसूदनस्य ॥

व्यक्तानुरागमिव खेलदनंगखेद-

स्वेदाम्बुपूरमनुपूरयतु प्रियं वः ॥ १ ॥

शृङ्गार रस में लग्न राधाजी के स्तनद्वय में लगे हुए केशर की शोभा से व्यक्त वृन्दावन विहारी का हृदय आप लोगों का मंगल करे ॥ १ ॥

वसन्ते वासन्तीसुकुमकुसुमारैरवयवै-

र्भ्रमन्तीं कान्तारे बहुविहितकृष्णानुसरणासु ।

अमन्दं कन्दर्पज्वरजनितचिन्ताकुलतया

चलद्बाधां राधां सरसमिदमूचे सहचरी ॥ २ ॥

वसन्तऋतु में कामदेवके उग्र बाणसे पीड़ित राधा श्रीकृष्णचन्द्र जी से मिलने के हेतु वासन्ती पुष्पोंसे परिपूर्ण वन के मध्य में भ्रमण करने लगीं । उस समय श्रीवृषभानुनन्दिनी राधिकाकी कोई प्रिय सहेली उदासीन राधा का दिखाकर कहने लगी ॥ २ ॥

वसन्त रागे रूपकताले अष्टपदी ।

ललितलवङ्गलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे ।

मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुञ्जकुटीरे ॥

समेतम्]

तृतीयः सर्गः

११

विहरति हरिरिह सरसवसन्ते नृत्यति युवतिजनेन
समं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते ॥ १ ॥ ध्रुव०

हे सखी ! यह मलयवात लवंगलता के निकुञ्ज-वन को
आलिङ्गित कर रहा है, अमर और कोकिलादिक पक्षीगण अपनी-
अपनी मधुर ध्वनि से क्या ही मन को आनन्द दे रहे हैं और
स्वयं नारायण वसन्त ऋतु में नारियों के समूह से युक्त निकुञ्ज
वन में अति सुन्दर नृत्य कर रहे हैं । हे सखी ! वसन्तऋतु विरही
जनों को अत्यन्त दुःखदायी होता ही है ॥ १ ॥

उन्मदमदनमनोरथपथिकवधूजनजनितविलापे ।

अलिकुलसङ्कुलकुसुमसमूहनिराकुलबकुलकलापे । २

यह वही वसन्त है, कि जिसमें काम की तीव्र अभिलाषाओं से
पथिक-वधू उन्मत्त होकर विलाप किया करती हैं और बकुलके फूलोंपर
अमर बैठते हैं, जिससे बकुल वृक्ष ही झुक जाते हैं ॥ २ ॥

मृगमदसौरभरभसवशंवदनवदलमालतमाले।युवजन
हृदयविदारणमनसिजनखरुचिकिंशुकजाले ॥ ३ ॥

तमालवृक्षों के नवीन पल्लवों की कस्तूरी तुल्य सुगन्धि से
निकुञ्ज वन व्याप्त है । यह निकुञ्ज पलाश के पुष्पों से चारों
ओर सुवर्ण सदृश हो रहा है । इसे देखने से यही प्रतीत होता है
कि, कामदेव विरही जनों के हृदय विदीर्ण करने के लिये अपने
नखों को विस्तृत कर रहा है ॥ ३ ॥

मदनमहीपतिकनकदण्डरुचिकेसरकुसुमविकाशे ।

मिलितशिलीमुखपाटलिपटलकृतस्मरतूणविलासे । ४

१२

श्रीगीतगोविन्दम्-

[भाषाटीका-

कहीं-कहीं नागकेसर की लता फूल रही है, उससे यह ज्ञात होता है कि, कामदेव ने सिर पर सुवर्ण छत्र धारण किया है । किसी २ स्थान में पाटली के फूल, फूल रहे हैं और उनपर मत्त भ्रमरगण गुंजार करते हैं, इससे यह प्रतीत होता है कि, मदन का तूण बाणों से भरा है ॥ ४ ॥

विगलितलज्जितजगदवलोकनतरुणवरुण-
कृतहासे । विरहिनिक्वन्तनकुन्तमुखाकृति
केतकिदन्तुरिताशे ॥ ५ ॥

हे सखी ! वसन्त ऋतु को देखकर समस्त संसार निर्लज्ज हो गया है, इसी कारण ये नवीन वरुण के वृक्ष फूलने के व्याज से उसकी हँसी कर रहे हैं, देखिये तो सही यह केतकी के पुष्प भल्लाकार मुख धारण किये विरही जनों के हृदय को भली भाँति वेधित करते हैं ॥ ५ ॥

माधविकापरिमलललिते वनमालिकयातिसुगन्धौ ।
मुनिमनसामपिमोहनकारिणि तरुणाकारणबन्धौ ६

यह वसन्त समय माधवी (चमेली) और नवमल्लिका के पुष्पों की सुगन्धित से अत्यन्त ललित है । इससे जितेन्द्रिय सत्यवादी सन्त जन भी मोहित हो जाते हैं । यह वसन्त इस समय युवक-युवतियोंका अकारण बन्धु है ॥ ६ ॥

स्फुरदतिमुक्कलतापरिरम्भणमुकुलितपुलकितचूते ।
वृन्दावनविपिने परिसरपरिगतयमुनाजलपूते ॥ ७ ॥

समेतम्]

चतुर्थः सर्गः

१३

आम्रवृक्ष चमेलीलता से आलिङ्गित होकर मुकुलित और आनन्द से पुलकित हैं एवं पास में बहनेवाली यमुना के जल से घृन्दावन पवित्र हो रहा है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवमणितमिदमुदयतिहरिचरणस्मृतिसारम् ।
सरसवसन्तसमयवनवर्णनमनुगतमयनविकारम् ॥ ८ ॥

कविवर श्रीजयदेव स्वामी श्रीकृष्णचन्द्र के चरण कमल का अवलम्बन करके घृन्दावन के निकुञ्ज का वर्णन करते हैं और उसीके साथ वसन्त समय में गोपीगणों के हृदय में जो विरह पीड़ा हुई थी, उसका भी वर्णन करते हैं ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे तृतीयः प्रबन्धः ॥ ३ ॥

दरविदलितमल्लीवल्लीचञ्चत्परागप्रकटितपटवा-
सैर्वासयन्काननानि । इह हि दहति चेतः केतकी-
गन्धबन्धःप्रसरदसमबाणप्राणवद्गन्धवाहः ॥ १ ॥

हे राधे ! वसन्त के समय में कुछ लिखी हुई चमेली की लताओं से, उड़ती हुई पुष्पों की रजों से वन को सुगन्धित करता हुआ केतकी के गन्ध से सुगन्धित पवन कामदेव के प्राण के समान वियोगियों के चित्तको दग्ध करता है, अर्थात् इस वसन्त समय में सुगन्धित वायु से विरही जनोंका चित्त उन्मत्त हो रहा है, इस कारण हे वृषभानु नन्दिनि ! ऐसे समय आपका गमन उचित है ॥ १ ॥

उन्मीलन्मधुगन्धलुब्धमधुपन्याधूतचूताङ्कुर-
क्रीडत्कोकिलकाकलीकलकैरुद्गीर्णकर्णज्वराः ।

नीयन्ते पथिकैः कथं कथमपि ध्यानावधानक्षण-
प्राप्तप्राणसमासमागमरसोल्लासैरमी वासराः ॥ २ ॥

हे सखि ! जितनाही आभ्रमुकुल का गन्ध विस्तारित होता है, उतनाही मधुगंधलुब्ध भ्रमर उनको कम्पायमान करते हैं, वैसेही पवनसे झकोरको प्राप्त आभ्रवृक्षों के सिरपर बैठकर कोकिलायें कुहू २ शब्दसे विरही पथिकों के कानों में विशेष पीड़ा देती हैं । हाय ! ऐसे पथिक (मार्ग चलानेवाले) आज अपनी प्राण-प्रिया का चिंतन करते हुए समय बिताते हैं और चिंता के कारण कान्पनिक क्षणिक सुख को प्राप्त होकर पश्चात् अत्यन्त क्लेश से दिन व्यतीत करते हैं ॥ २ ॥

अनेकनारीपरिरम्भसभ्रमस्फुरन्मनोहारिविलासलालसम् । मुरारिमारादुपदर्शयन्त्यसौ सखी समक्षं पुनराह राधिकासम् ॥ ३ ॥

अनेक स्त्रियोंके आलिंगनके आदरसे मनोहर विलास में प्रकट लालसा वाले श्रीकृष्णचन्द्रजी को दूर से प्रत्यक्ष दिखाती हुई सखी पुनः राधिकाजी के प्रति बोली ॥ ३ ॥

रामकलिरागे रुहकताले अष्टपदी ४

चन्दनचर्चितनीलकलेवरपीतवसनवनमाली । केलि-
चलन्मणिकुण्डलमण्डितगण्डयुगस्मितशालीहरिरिह
मुग्धवधूनिकरे विलासिनि विलसित केलिपरे ॥ ध्रु०

हे श्रीकृष्णविलासिनि राधे ! श्रीकृष्णचन्द्रजी ने चन्दन का अपने नील अंगों में लेपन किया है और पीताम्बर ने उन अंगों

समेतम्]

चतुर्थः सर्गः

१५

को सुशोभित किया है, कंठमें सुन्दर बनमाला धारणकी है, श्री कृष्णजी के कपोल, हँसी सहित कामविलास के कारण अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो रहे हैं और उनके कुण्डलों के हिलने से मुखकी शोभा अपूर्व हो रही है । इस भाँति श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द इसी बन से ब्रजवालाओं के साथ क्रीड़ा में तत्पर हैं ॥ १ ॥

पीनपयोधर भारभरेण हरिं परिरभ्य सरागम् । गोप-
वधूरनुगायति काचिदुदञ्चितपञ्चमरागम् । हरिरिह० २

हे राधे ! कोई २ उन्नतस्तनी गोपवधू प्रेम से उन्मत्त होकर कृष्णजीका आलिंगन करके पंचम रागमें गीत गाती हैं ।

कापिविलासविलोलविलोचनखेलनजनितमनोजम् ।
ध्यायति मुग्धवधूरधिकं मधुसूदनवदनसरोजम्
हरिरिह० ॥ ३ ॥

श्रीकृष्णजी के भ्रूभंग से मोहित होकर कोई २ गोपकामिनी उनके मदनविकसित मुखकमल का ध्यान करके बहुतही आनन्द को प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥

कापि कपोलतले मिलितालपितुं किमपिश्रुतिमूले ।
चारु चुचुम्ब नितम्बवति दयितं पुलकैरनकूले ।
हरिरिह० ॥ ४ ॥

किसी २ गोपांगनाने गुप्तवार्ताके कहने के बहाने से श्रीकृष्ण जीके समीप अपने मुखको ले जाकर चातुरी पूर्ण ढंग से कृष्ण के मुखकमलका आनन्द पूर्वक चुम्बन कर लिया ॥ ४ ॥

केलिकलाकुतुकेन च काचिदमुं यमुनाजलकूले ।

मञ्जुलवञ्जुलकुञ्जगतं विचर्ष करेण दुकूले

कोई गोपी क्रीड़ा की इच्छासे यमुनाजल के तटपर बैतों के कुञ्ज में विहार करते हुए श्रीकृष्णचन्द्रजी का दुपट्टा हाथ से पकड़ कर खींचने लगीं अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्रजी के संग कामक्रेलिके आनन्द को भोगनेकी उनसे इच्छा प्रगट करने लगीं ॥ ५ ॥

करतलतालतरलवल्यावलिकलितकलस्वनवंशे ।

रासरसे सह नृत्यपरा हरिणा युवतिः प्रशशंसे ॥

हरिरिह० ॥ ६ ॥

किसी रमणी ने श्रीकृष्ण के साथ नाचते हुए करतल के साथ कंगन की ध्वनि भी उनकी वंशीकी ध्वनिके साथ मिला दी, इस ध्वनि को सुनकर श्रीकृष्णचन्द्रजी ने उस रमणी की अत्यन्त ही प्रशंसा की ॥ ६ ॥

श्लिष्यति कामपि चुम्बति कामपि कामपि

रमयति रामाम् । पश्यति सस्मितचारु परामपरा-

मनुगच्छति वामाम् ॥ हरिरिह० ॥ ७ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज किसी गोपीका का आलिंगन करते हैं, किसीके मुख का चुम्बन करते हैं, किसी गोपी के संग काम क्रीड़ा करते हैं और किसीको हँसकर मनोहर दृष्टि से देखते हैं और किसी २ गोपी पीछे-पीछे भी चलते हैं ॥ ७ ॥

समेतम्]

२

प्रथमः सर्गः

१७

श्रीजयदेवकवेरिदमद्भुतकेशवकलितरहस्यम् ।

वृन्दावनविपिने ललितं वितनोतु शुभानि यशस्यम् ॥

हरिरिह० ॥ ८ ॥

अनेक रसों से परिपूर्ण, जयदेव कविकृत यह केशव क्रीड़ा का रहस्य गीत गोपियों को आनन्द और भक्तोंको मंगल दे ।

इति श्रीगीतगोविन्दे चतुर्थः प्रबन्धः ॥ ४ ॥

विश्वेषामनुरंजनेन जनयन्नानन्दमिन्दीवरश्रेणीश्या-
मलकोमलैरुपनयन्नङ्गैरनङ्गोत्सवम् । स्वच्छन्दं ब्रज-
सुन्दरीभिरभितः प्रत्यङ्गमालिङ्गितः शृङ्गारः सखि
मूर्तिमानिव मधौ मुग्धो हरिः क्रीडति ॥ १ ॥

हे राधे ! ब्रजकामिनियों के स्वच्छन्द आलिङ्गन से संसार को आनन्दित करते हुए श्रीकृष्णचन्द्रजी आपही शृङ्गाररस स्वरूप हो जाते हैं और वसन्त ऋतु में सर्वत्र ब्रजनारियों की इच्छा पूर्ण करते हैं । भगवान् के नील कमल के समान कोमल अंगों के भोग का अनुभव करके समस्त ब्रज नारियाँ क्रीड़ा कौतुक में मग्न हो जाती हैं ॥ १ ॥

अद्योत्सङ्गवसद्भुजङ्गकवलक्लेशादिवेशाचलप्राले-
यप्लवनेच्छयानुसरति श्रीखण्डशैलानिलः ॥ किञ्चि-
त्तिस्नग्धरसालमौलिकुसुमान्यालोक्य हर्षोदयादुन्मी-
लन्ति कुहूः कुहूरिति मुहुस्ताराः पिकानां गिरः ॥ २ ॥

हे राधे ! आज वसन्त के समय निज स्थानस्थित सर्पों के
 ग्रास भय से यह मलयाचल पर्वत, हिम में डूबने की इच्छा से
 हिमालय की ओर गमन करता है और आम्र के कोमल पत्तों
 को देखकर कोयलों का कुहू-कुहू शब्द आनन्द पूर्वक ऊँचे स्वर
 से निकल रहा है ॥ २ ॥

रासोल्लासभरेण विभ्रमभृतामाभीरवामभ्रुवामभ्यर्णं
 परिरभ्यनिर्भरमुरः प्रेमान्धयाराधया । साधुत्वद्वदनं
 सुधामयमिति व्याहृत्य गीतस्तुतिर्व्याजादुद्भट-
 चुम्बितः स्मितमनोहारी हरिः पातु वः ॥ ३ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे सामोददामोदरो नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

रासक्रीड़ा से प्रसन्न गोपियों के सामने श्री राधा ने श्री
 कृष्णजी से कहा कि, हे भगवन् ! आपका मुखकमल अमृत
 पूर्ण है, ऐसा कह कर राधाजी ने उनके वदन का चुम्बन कर
 लिया, चुम्बन जनित हास्य रेखा से अलंकृत श्रीकृष्णचन्द्रजी
 का वह मुख कमल सर्व जीवों का मङ्गल करे ॥ ३ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दभाषाटीकायां सामोददामोदरो नाम प्रथमः सर्गः

—:०:—

अथ द्वितीयः सर्गः ।

—:०:—

विहरति वने राधा साधारणप्रणये हरौ ।
 विकलितनिजोत्कर्षादीर्ष्यावशेन गतान्यतः ॥

समेतम्]

द्वितीयः सर्गः

१९

कचिदपि लताकुञ्जे गुञ्जन्मधुव्रतमण्डली

मुखरशिखरे लीना दीनाप्युवाच रहःसखीम् ॥ १ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रजी के प्रेम में उन्मत्त राधा ने अन्य स्त्रियों के साथ क्रीड़ा-कौतुक में लगे हुए श्रीकृष्णको देख अपने हृदयमें ईर्ष्या करके मधुपानमत्त अमर गणों से सेवित लता कुञ्जके पीछे छिपकर निज सखीसे अत्यन्त खेद युक्त होकर यों कहना आरम्भ किया ।

गुर्जररागे रूपकताले अष्टपदी ॥ ५ ॥

संचरदधरसुधामधुरध्वनिमुखरितमोहनवंशम् ।

चलितदृगञ्चञ्चलमौलिकपोलविलोलवतंसम् ॥

रासे हरिमिह विहितविलासं स्मरति मनो मम
कृतपरिहासम् ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे प्रिये ! श्रीकृष्णचन्द्रजी की मनो-मोहिनी छवि मेरी आँखों में तथा हृदयमें बसी है । अधरामृत के सञ्चारद्वारा मीठी ध्वनि से अलंकृत वन्शी को जिस समय वे बजाते हैं और तिरछी आँखों से देखने वाले, चञ्चल मुकुट तथा किरीट को धारण किये हुए जिस समय वे मधुर परिहास करने लगते हैं, उस समयकी उनकी छटाका मुझे बार-बार स्मरण होता है ॥ १ ॥

चन्द्रकचारुमयूरशिखण्डकमण्डलवलयितकेशम् ।

प्रचुरपुरन्दरधनुरनुरञ्जितमेदुरमुदिरसुवेशम् रासे० २

श्रीकृष्णचन्द्र के केश मयूरपुच्छ के सदृश शोभायमान हो रहे हैं और उनकी कान्ति इन्द्रधनुष के समान शोभित हो रही है ॥ २ ॥

गोपकदम्बनितम्बवतीमुखचुम्बनलम्बितलोभम् ।

बन्धुजीवमधुराधरपल्लवमुल्लसितस्मितशोभम् रासे०

हे सखी ! जिन श्रीकृष्ण ने नितम्बवती गोपवालाओं के मुख कमलों का चुम्बन करने के लिये लोभ किया है और जिनका अधर पल्लव बन्धुजीव के समान मधुर हैं—हँसी से जिनकी शोभा उल्लसित हो रही है, ऐसे श्रीकृष्ण को मेरा मन स्मरण करता है ॥ ३ ॥

विपुलपुलकभुजपल्लववलयितवल्लवयुवतिसहस्रम् ।

करचरणोरसिमणिगणभूषणकिरणविभिन्नतमिस्रम् ॥

जिन हरिने नवीन पल्लवस्वरूप कोमल हाथों से हजारों गोप-कामिनियों को अलंकृत किया है, जिन हरिके हाथों और चरणों के भूषणों से समस्त अन्धकार नाश होता है, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र जीको मेरा मन स्मरण करता है ॥ ४ ॥

जलदपटलचलदिन्दुविनिन्दकचन्दनतिलकललाटम् ।

पीनपयोधरपरिसरमर्दननिर्दयहृदयकपाटम् ॥ रासे० ॥

हे सखि ! जिनके ललाटमें लगा चन्दन मेघोंके समूह में चञ्चल चन्द्रमा की निन्दा करता है और गोपियों के पुष्ट स्तनों के प्रान्तभाग का मर्दन करने में जिनका वक्षस्थल दवता नहीं है, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रजी को मेरा मन स्मरण करता है ॥ ५ ॥

मणिमयमकरमनोहरकुण्डलमण्डितगण्डमुदारम् ।

पीतवसनमनुगतमुनिमनुजसुरासुरवरपरिवारम् ॥ ६

हे सखि ! जिन हरिके गण्डदेशमें अत्यन्त सुन्दर मणियोंके

स्मृतम्]

द्वितीयः सर्गः

२१

कुण्डलाभूषण शोभायमान हो रहे हैं और जिनके चरण कमल की सेवा ऋषि, मनुष्य, देवता असुरादि सभी करते हैं, जिन हरिने अपने सुन्दर पीताम्बर से अद्भुत कोमल अङ्गों को शोभित किया है, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र को मेरा मन स्मरण करता है ॥ ६ ॥

विशदकदम्बतले मिलितं कलिकलुषभयं शमयन्तम् ।
मामपि किमपि तरङ्गदनङ्गदृशा मनसा रमयन्तम् ॥
रासे० ॥ ७ ॥

हे सखि ! अत्यन्त सुन्दर कदम्ब के नीचे मिलनेवाले, कलिकाल में उत्पन्न हुए पाप-भयके नाशक तथा कामक्रीड़ाको बढ़ानेवाली दृष्टि से देखनेवाले और हृदय से मेरे साथ रमण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र को मेरा मन स्मरण करता है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेव भणितमत्तिसुन्दरमोहनमधुरिपुरुषम् ।
हरिचरणस्मरणं प्रति सम्प्रति पुण्यवतामनुरूपम् ॥
रासे० ॥ ८ ॥

श्रीजयदेव कवि रचित अति सुन्दर श्रीकृष्ण चन्द्रके रूपका वर्णन इस कलिकाल में भक्तों को हरिचरणों के स्मरण के लिये उपयुक्त होवे ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे पञ्चमः प्रबन्धः ॥ ५ ॥

गणयति गुणग्रामं भ्रामं भ्रमादपि नेहते । वहति च
परितोषं दोषं विमुञ्चति दूरतः ॥ युवतिषु चलतृष्णे
कृष्णे विहारिणि मां विना । पुनरपि मनो वामं
कामं करोति करोमि किम् ॥ १ ॥

श्रीवृषभान नन्दिनी राधाके यह वचन सुनकर सखियाँ राधाजी से कहने लगीं—हे राधे ! श्रीकृष्णजी जब तुम्हें छोड़ अन्य व्रजनारियों के साथ क्रीड़ा व्यवहार करते हैं तो तुम क्यों चिढ़ती हो ? यह सुन राधा ने कहा कि, हे सखि ! चाहे श्रीकृष्णजी मुझे छोड़ अन्य गोपियों के साथ क्रीड़ा में भलेही आसक्त होवें परन्तु मेरा मन तो उनपर लग गया है । उनके दोष करने पर भी उन्हें छोड़ना नहीं चाहती और उनके ध्यान से मेरा मन प्रसन्न होता है, कहो मैं इस विषय में क्या करूँ ॥ १ ॥

मालवरागे पकतालि ताले अष्टपदी ॥ ६ ॥

निभृतनिकुञ्जगृहं गतया निशि रहसि निलीय
वसन्तम् । चकितविलोकितसकलदिशारतिरभसभ-
रेण हसन्तम् । सखि हे केशिमथनमुदारम् रमय
मया सह । मदनमनोरथभावितया सविकारम् ॥ ध्रु० १

हे सखि ! शान्त लतागृह में आई हुई मेरे साथ रातको एकान्त में क्रीड़ा करने वाले, चकित होकर इधर-उधर देखने पर कौतुक से भरी हँसी हँसनेवाले, केशि दैत्य को मारनेवाले कृष्ण के साथ कामभावसक्त मुझे तुम मिला दो ॥ २ ॥

प्रथमसमागमलजितया पटु चाटुशतैरनुकूलम् ।
मृदुमधुरस्मितभाषितया शिथिलीकृतजघनदुकूलम् ॥

सखि हे० ॥ २ ॥

हे सखि ! प्रथम समागम की लज्जा से युक्त मेरे साथ कोमल मधुर हँसी सहित भाषण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र अनेक

समेतम्]

द्वितीयः सर्गः

२३

भाँति मेरी विनती करेंगे । उस समय मेरी लज्जा दूर हो जावेगी
तब श्रीकृष्ण आपही मेरे जाँघ पर की साड़ी हटावेंगे । हे सखि !
ऐसे उन श्रीकृष्णजी से तुम हमें मिला दो ॥ २ ॥

किसलयशयननिवेशितया चिरमुरसि ममैव शयानम् ।
कृतपरिरम्भणचुम्बनया परिरभ्य कृताधरपानम् ॥
सखि हे० ॥ ३ ॥

हे सखि ! मैं कुञ्जकुटीर के मध्य कोमल पत्तों की शय्या
बनाकर शयन करूँगी, तब श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण मेरे साथ विरा-
जमान होकर मेरेही वक्षस्थल पर चिरकाल तक शयन करते हुए
आलिङ्गन कर मेरा अधरामृत पान करेंगे, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रजी
से तुम हमें मिला दो ॥ ३ ॥

अलसनिमीलितलोचनया पुलकावलि ललितकपोलम् ।
श्रमजलसिक्तकलेवरया वरमदनमदादतिलोलम् ॥
सखि हे० ॥ ४ ॥

हे सखि ! इस प्रकार कामभोग के समय मदासक्ति से
श्रीकृष्ण के दोनों ही नेत्र अधखुले ही रहेंगे और उनके दोनों
ही कपोल पुलकित होकर अत्यन्त सुन्दर स्वरूप धारण करेंगे ।
मेरे वदन पर पसीने की बूँदों को देखकर वह श्रीकृष्ण मुझे ही
बार-बार चञ्चल नेत्रों से देखेंगे, हे सखि ! ऐसे श्रीकृष्णजी से
मुझे मिला दो ॥ ४ ॥

कोकिलकलरवकूजितया जितमनसिजतन्त्रविचारम् ।

श्लथकुसुमाकुलकुन्तलया नखलिखितघनस्तनभारम्
सखि हे० ॥ ५ ॥

हे सखि ! कोकिल के समान शब्द करने वाली, रति के समय ढीले-ढीले फूलों से गुथे हुए अलकों वाली मेरे साथ काम-देव को मात करने वाले और स्तनों पर नखक्षत करने वाले श्रीकृष्णचन्द्रजी को मिला दो ॥ ५ ॥

चरणरणितमणिनूपूरया परिपुरितसुरतवितानम् ।
मुखरविशृङ्खलमेखलया सकचग्रहचुम्बनदानम् ॥
सखि हे० ॥ ६ ॥

हे सखि ! मणिजटित नूपुरों के शब्दों वाली और ढीली हो गई है मेखला (कमर बन्धन नारा) जिनकी ऐसी मुझसे, मेरे संग परिपूर्ण किया है रति क्रीड़ा का सुख जिन्होंने तथा मेरे केशोंको पकड़ कर किया है मुखचुम्बन जिनने ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रजी को मिला दो ॥ ६ ॥

रतिसुखसमयरसालसया दरमुकुलितनयनसरोजम् ।
निःसहनिपतिततनुलतया मधुसूदनमुदितमनोजम् ॥
सखि हे० ॥ ७ ॥

हे सखि ! रतिक्रीड़ा में आसक्त होने से मेरे अङ्गों में शिथिलता अवश्य आयेगी और श्रीकृष्णजी के कमल नेत्र भी अनंगराग से निश्चय ही मुद्रित होवेंगे । श्यामसुन्दर मेरी यह दशा देखकर उस समय मुझपर अत्यन्त आसक्त हो जायेंगे ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रजी को मुझसे अवश्य मिला दो ॥ ७ ॥

समेतम्]

द्वितीयः सर्गः

२५

श्रीजयदेव भणितमिदमतिशयमधुरिपुविधुवनशीलम्
सुखमुत्कण्ठितगोपवधूकथितं वितनोतु सलीलम् ॥

सखि हे० ॥ ८ ॥

जयदेव कवि रचित श्रीकृष्णचन्द्रजी के चरित्रसे युक्त, प्रीति
पूर्वक राधा जी द्वारा कही हुई शृंगाररस की यह लीला पढ़ने
और सुननेवालों को इस लोक और परलोक में सुखद हो ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे षष्ठः प्रबन्धः ।

हस्तसस्तविलासवंशमनृजुभ्र वल्लिमद्वल्लवी ।
वृन्दोत्सारिदृगन्तवीक्षितमतिस्वेदार्द्रगण्डस्थलम् ॥
मामुद्वीक्ष्य विलज्जितस्मितसुधीमुग्धाननं कानने ।
गोविन्दं ब्रजसुन्दरीगणवृतं पश्यामि हृष्यामि च ॥ १ ॥

हे सखि ! जो हरि-ब्रजवालाओंसे घिरे हुए हैं और समस्त
वालायें छिपे हुए भावसे-जिन हरिकी ओर कटाक्ष युक्त दृष्टिपात
करती हैं और मुझे देखकर जिन श्रीकृष्णकी वंशी गिरजाती है
तब कृष्ण की हँसी कन्दर्परागसे परिपूर्ण हो जाती है, जिनके कपोल
पसीने से गीले हो रहे हैं, इस भाँति वनमें केलि करते हुए उन
कन्हैयाको देखकर मेरे मनमें अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है ॥ १ ॥

दुरालोकस्तोकस्तवकनवकाशोकलतिका ।

विकासः कासारोपवनपवनोऽपि व्यथयति ॥

अपिभ्राम्यद् भृङ्गी रणितरमणीयानमुकुल-

प्रसूतिश्चूतानां सखि शिखरिणीयं सुखयति ॥ २ ॥

हे सखि, मैं अपने दुःखकी कहानी क्या कहूँ ? यह नवीन अशोक की लता का फूलना, यह सरोवर का शीतल वायु, मुझे बड़ाही दुःख देता है, हे मेरी प्यारी ! यह अमर का राग और आम्र की सुन्दर कलियाँ भी मुझे सुख नहीं देती हैं ॥ २ ॥

साकूतस्मितमाकुलाकुलगलद्धम्भिल्लमुल्लासितभ्रू-
वल्लीकमलीकदर्शितभुजामूलार्द्धदृष्टस्तनम् ।

गोपीनां निभृतं निरीक्ष्य दयितं काञ्चिचिरं चिन्तय-
न्नन्तर्मुग्धमनोहरो हरतु वः क्लेशं नवः केशवः ३
इति श्रीगीतगोविन्दे अक्लेशकेशवो नाम

द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

समस्त गोपियों के हाव भाव कटाक्ष युक्त मुखों को और कामवश से छूटी हुई वेणी को तथा आनन्द पूर्वक भृकुटियों के कटाक्ष एवं स्तनों को देखकर कन्हैयाजी सब कामिनियों में से राधाजी को श्रेष्ठ अनुमान करके बहुत देर तक उनके सौन्दर्य का ध्यान करने लगे । ऐसे मधुर तथा चित्त चोर राधाजी के प्रियतम आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र क्लेशको दूरकर तुम्हें मंगल दें ॥ ३ ॥

तृतीयः सर्गः

कंसारिरपि संसारवासनावन्धशृङ्खलाम् ।

राधामाधाय हृदये तत्याज ब्रजसुन्दरीः ॥ १ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रजीने सांसारिक वासनाको बाँधने की शृंखला राधाजी को मनमें स्थिर कर अन्य ब्रज सुन्दरियोंका त्याग कर दिया ॥ १ ॥

समेतम्]

तृतीयः सर्गः

२७

इतस्ततस्तामनुसृत्य राधिकामनङ्गवाणव्रणखिन्नमा-
नसः । कृतानुतापः स कलिन्दनन्दिनीतटान्तकुञ्जे
निषसाद माधवः ॥ २ ॥

कामदेव के वाणों से लग गया है घाव जिनको, दीन है
मन जिनका, किया है अनेक भाँति से पश्चात्ताप जिन्होंने, ऐसे
वह श्रीकृष्ण इधर-उधर वृषभानुनन्दिनी राधिकाको ढूँढ़कर यमुना
तट के समीपस्थ कुञ्ज में बैठ गये ॥ २ ॥

गुर्जररागे प्रतिमण्डताले अष्टपदी १. ७ ॥

मामियं चलिता विलोभ्य वृतं वधूनिचयेन ।

सापराधतया मयापि न वारितातिभयेन ।

हरि हरि हतादरतया गता सा कुपितेव ध्रु० ॥१॥

गोपियों के वृन्द से घिरा हुआ मुझे देखकर राधाजी यहाँ
से चली गई और जाते समय मैंने मना भी नहीं किया, जिससे
नष्ट हुआ है मान जिनका ऐसी वह राधा कोप करके यहाँ से
चली गई है । अहो ! यह मैंने बड़ाही अपराध किया है ॥ १ ॥

किं करिष्यति किं वदिष्यति सा चिरं विरहेण ।

किं जनेन धनेन किं मम जीवितेन गृहेण ॥हरि०॥२॥

मेरे बहुत काल के विरह से सन्तप्त वह राधा अपने
विरह शान्तिके लिये क्या उपाय कोगी और क्या कहेगी ? मुझे
इन अन्य गोपीजनों से क्या प्रयोजन है ? जिसके वियोग में मैंने
सभी को त्याग दिया है । इस समय धन से, घरसे और जीवन
से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है, यह सब निष्फल है ॥ २ ॥

चिन्तयामि तदाननं कुटिलभ्रू रोषभरेण ।

शोणपद्ममिवोपरि भ्रमताकुलं भ्रमरेण ॥हरि० ॥३॥

क्रोध की अधिकता से कुटिल हैं भृकुटियाँ जिसकी, भ्रमरों से युक्त कमल के समान मुख है जिस राधा का ऐसे मुखारविन्द का मैं स्मरण करता हूँ ॥ ३ ॥

तामहं हृदि सङ्गतामनिशं भृशं रमयामि ।

किंवनेऽनुसरामि तामिह किं वृथा विलपामि॥हरि०४

यह विलाप करते हुए हरिने कहा कि, हे राधे ! तेरी मनो-हर मूर्ति मेरे हृदय कमल में सदैव स्थिर रहती है और उसी मूर्ति का मैं निरन्तर पूजन किया करता हूँ । इस अखंड बन में तुझे ढूँढने से मुझे दुःख मिल रहा है । विलापादि करना भी व्यर्थ है ॥४॥

तन्वि खिन्नमसूयया हृदयं तवाकलयामि ।

तन्न वेद्मि कुतो गतासि न तेन तेऽनुनयामि ॥

हरि० ॥ ५ ॥

हे तन्वि ! कोमलाङ्गि राधे ! मैं आपके हृदय को दुःखी जानता हूँ, परन्तु यह नहीं जानता कि तू यहाँ से कहाँ चली गई है, इसीसे तुझे प्रसन्न करने में मैं असमर्थ हूँ ॥ ५ ॥

दृश्यसे पुरतो गतागतमेव मे विदधासि ।

किं पुरेव ससंभ्रमं परिरम्भणं न ददासि ॥हरि०॥६॥

हे वृषभानुनंदिनि ! तू मुझे आती जाती दिखाई देती है तो फिर पहले की भाँति मेरे पास आकर वेगसे क्यों नहीं आलिङ्गन

समेतम्]

तृतीयः सर्गः

२९

करती । विरही पुरुष सर्वत्र निज प्रियाही को देखा करते हैं ॥६॥

क्षम्यतामपरं कदापि तवेदृशं न करोमि ।

देहि सुन्दरि दर्शनं मम मन्मथेन दुनोमि । हरि० ७

हे सुन्दरि ! मेरे किये हुए पिछले अपराधों को क्षमा करो
अब मुझसे आपका कोई अपराध न होगा, मुझे दर्शन दो मैं
कामसे पीड़ित हूँ ॥ ७ ॥

वर्णितं जयदेवकेन हरेरिदं प्रणतेन ।

बिल्वसमुद्रसम्भवरोहिणीरमणेन ॥ हरि० ॥ ८ ॥

बिल्वरूपीसमुद्रमें चन्द्रमाके तुल्य भक्तिप्रधान जयदेव
स्वामी रचित श्रीकृष्णजी के परितापका वर्णन सदैव भक्तजनों की
तृप्ति करने वाला हो ॥ ८ ॥

इति श्री गीतगोविन्दे सप्तमः प्रबन्धः

अ पल्लवंधनुरपाङ्गतरङ्गितानिबाणागुणाः श्रवणपा-
लिरिति स्मरेण ॥ तस्यामनङ्गजयजङ्गमदेवतायाम-
न्त्राणि निर्जितजगन्ति किमर्पितानि ॥ १ ॥

समस्त संसार को जीतने के बाद अपने विजयी अस्त्रों को
कामदेव ने अपनी साक्षात् विजय देवता राधा जी में रख दिया
है श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि, सचमुच राधा की भौंहें ही धनुष,
कटाक्ष की परम्परा ही बाण तथा कर्ण देश ही प्रत्यश्चा है ॥१॥

हृदि विसलताहारो नायं भुजङ्गमनायकः

कुवलयदलश्रेणी कण्ठे न सा गरलद्युतिः ।

मलयजरजो नेदं भस्म प्रियारहिते मयि

प्रहर न हर भ्रान्त्यानङ्ग क्रुधा किमु धावसि ॥२॥

इतने पर श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि, ऐ कामदेव ! तू मुझे शंकर समझ कर बदला लेने के लिये क्रोध पूर्वक क्यों दौड़ रहा है ? मेरे हृदय पर शान्तिके लिये रखे हुए मृणालको सर्प न समझ, मेरे गले में ठंढक के लिये बड़ी नील कमल की पंक्ति को विष का चिह्न न समझ । मैं इस समय विरही हूँ, विरह संताप की शान्ति के लिये लगे हुए चंदन को शंकर की विभूति न जान ॥२॥

पाणौ मा कुरु चूतसायकममुं मा चापमारोपय

क्रीडानिर्जितविश्वमूर्च्छितजनाघातेन किं पौरुषम् ।

तस्या एव मृगीदृशो मनसिजप्रेक्षत्कटाक्षानिल-

ज्वालाजर्जरितं मनागपि मनो नाद्यापि सन्धुक्षते ॥३॥

हे क्रीड़ा से ही समस्त संसार को जीतने वाले ! इस आभ्र पुष्प रूपी बाणको हाथमें लेकर धनुष पर मत चढ़ाओ, क्योंकि, मूर्छा को प्राप्त हुए मेरे सदृश जनकी पीड़ा से तेरा क्या पुरुषार्थ होगा ? कुछ भी नहीं । कारण कि, उसी मृगनयनी राधाजी के चलाये हुए कटाक्ष रूपी बाणों की ज्वाला से टुकड़े २ हुआ मेरा मन निर्जीव सा हो गया है, अब उसमें जीवन नहीं रह गया है, इसलिये निष्प्राण पर प्रहार करना धर्म के विरुद्ध है ॥ ३ ॥

भ्रूचापे निहितः कटाक्षविशिखो निर्मातु मर्मव्यथां
श्यामात्मा कुटिलः करोतु कवरीभारोऽपि मारोद्यमम् ।

समेतम्]

तृतीयः सर्गः

३१

मोहंतावदयं च तन्वि तनुतां बिम्बाधरो रागवान्
सद्वृत्तस्तनमंडलं तव कथं प्राणैर्मम क्रीडति ॥४॥

श्रीकृष्णचन्द्र निज मन में स्थित राधाके प्रति अपना दुःख वर्णन करते हैं। हे राधे ! भृकुटीरूप धनुष पर चढ़ा हुआ कटाक्ष-रूपी बाण मेरे मन को भेदन करे तो अच्छा है। श्यामवर्ण कुटिल केशों का समूह भी कामदेव को बढ़ावे तो बढ़ावे कारण कि, जो भीतर से कुटिल हैं वे दूसरेको मारने का अवश्य ही यत्न करते हैं। यह राग पूर्ण रक्तवर्ण बिम्बाधर अधरोष्ठ मेरे राग का विस्तार करे तो करे कारण कि, रागवाला मोह को उत्पन्न करता ही है, परन्तु यह गोल तेरे दोनों स्तनों के मंडल मेरे प्राणोंके साथ क्यों क्रीड़ा करते हैं कारण कि, जो साधु भाव युक्त सदाचारी होते हैं, वे दूसरे के प्राणों के घातक कदापि नहीं होते ॥ ४ ।

तानि स्पर्शसुखानि ते च तरलाः स्निग्धा दृशोर्विभ्रमा
स्तद्वक्त्राम्बुजसौरभं स च सुधस्पर्न्दीं गिरां वक्रिमा
सा बिम्बाधरमाधुरोति विषया सङ्गेऽपि मन्मानसं
तस्यां लग्नसमाधि हंत विरहव्याधिः कथं वर्तते ॥५॥

हे राधे ! मैं तो कभी तुम्हारा स्पर्श करता हूँ व कभी तुम्हारे सुन्दर मुखका और कभी तुम्हारे चंचल नेत्रोंका दर्शन करता हूँ व कभी तुम्हारे मुखकमल की सुगंधी को सूँघता हूँ, कभी तुम्हारे मधुर मुस्कान युक्त प्रिय वचन को श्रवण करता हूँ और कभी तुम्हारे (बिम्बाधर) अधरोष्ठों की सुन्दरता का दर्शन किया

३२

श्रीगीतगोविन्दम्-

[भाषाटीका-

करता हूँ, इतने पर भी हे प्रिये राधे ! मेरी विरहरूपी पीड़ा क्यों नहीं शान्त होती ? यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि, ध्यान से युक्त गोपियों की तो व्याधि का नाश हो जाता है और मेरी व्याधि का नाश नहीं होता ॥ ५ ॥

तिर्यक्कण्ठविलोलमौलितरलोरांसस्य वंशोच्चरद्-
गीतस्थानकृतावधानललना चूर्ण संलक्षिताः ।
संमुग्धं मधुसूदनस्य मधुरे राधामुखेन्दौ मृदु-
स्पन्दं कन्दलिताश्विरं दधतु वः क्षेमं कटाक्षोर्मयः ॥ ६ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे मुग्धमधुसूदनो
नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीराधाजी के चन्द्रवत् मुखपर श्रीकृष्ण के कटाक्षपात करने से कण्ठदेश टेढ़ा हुआ था । शिरसे भूषण भी हिल गये थे । माधवजी की वंशीके गीत को सुनने में एकाग्रचित्त होनेके कारण गोपीने अनुभव नहीं किया था श्रीजयदेवजी कहते हैं कि, इस प्रकार मधुसूदनके कटाक्ष रूपी तरंग आप भक्तोंको बहुत कालतक कल्याणप्रद होवे ॥ ६ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दमहाकाव्ये तृतीयः सर्गः ॥३॥



अथ चतुर्थः सर्गः

यमुनातीरवानीरनिकुञ्जे मन्दमास्थितम् ।

प्राह प्रेमभरोद्भ्रान्तं माधवं राधिकासखी ॥ १ ॥

श्री यमुना नदी के तीर बेंतोंके कुञ्ज में राधाजी के प्रेमसे
पत्त चुपचाप बैठे हुए हरिके प्रति राधाजी की कोई प्रिय सहेली
कर यह वचन बोली ॥ २ ॥

कर्णाटकरागे एकतालिताले अष्टपदी ॥ ८ ॥

निन्दति चन्दनमिन्दुकिरणमनुविन्दति खेदमधीरम् ।
व्यालनिलयमिलनेन गरलमिव कलयति मलय-
समीरम् ॥ सा विरहे तव दीना ॥ माधव मनसिज-
विशिखभयादिव भावनया त्वयि लीना ध्रु० ॥ १ ॥

हे माधव ! आपके विरह से व्याकुल कामदेव के प्रहार से
आप ही में लीन राधा चन्दन और चन्द्र किरणसे भी हृदय शीतल
होने के कारण मलयागिरि की वायु को भी विष के समान
मानती है, अर्थात् उक्त पदार्थों से राधा के चित्त को शान्ति नहीं
मिलती कारण कि वह राधा आपके वियोग जनित दुःख से
खिंत है । १ ॥

विरलनिपतितमदनशरादिव भवदवनाय विशालम्
वहृदयमर्मणि वर्म करोति सजलनलिनदलजालम् ॥
। सा विरहे० ॥ २ ॥

हे कृष्ण ! राधिका काम के वाणों से अत्यन्त आतुर हो रही है । जलते हृदय में स्थिर आपकी मोहिनी मूर्ति को बचाने के लिये जल में भिगोये कमल के पत्तों से राधा जी ने अपने हृदय को ढक रक्खा है ॥ १ ॥

कुसुमविशिखशरतल्पमनल्पविलासकलाकमनीयम् ।
व्रतमिव तव परिरम्भमुखाय करोति कुसुमशयनीयम् ।
॥ सा विरहे ० ॥ ३ ॥

हे हरि ! वह राधा आपसे मिलने के हेतु कामदेव के वाणों के प्रहार से शरशय्यापर पड़ी है, अर्थात् आपसे मिलने के लिये शरशय्या व्रत कर रही है ॥ ३ ॥

वहति च चलितविलोचनजलधरमाननकमलमुदारम्
विधुमिव विकटविधुन्तुददन्तदलनगलितामृत-
धारम् ॥ सा विरहे ० ॥ ४ ॥

वहती जलधारावाले लोचनों से अलंकृत राधाका सुन्दर मुख ऐसा मालूम पड़ता है कि, जैसे राहुके भयंकर दाँतों से काट लिये जाने के कारण वहती हुई अमृत धारा वाले चन्द्रमा का सुन्दर बिम्ब हो ॥ ४ ॥

विलिखति रहसि कुरङ्गमदेन भवन्तमसमशरभूतम् ॥
प्रणमति मकरमधो विनिधाय करे च शरं नवचूतम् ॥
सा विरहे ० ॥ ५ ॥

हे हरि ! वह राधा एकान्त में स्थित होकर आपकी मूर्ति को

समेतम्]

चतुर्थः सर्गः

३५

कामदेव के रूप में चित्रित करती है और आपकी मूर्ति के नीचे मकर को और आपके हाथ में आग्ररूपी कामदेव के बाण लिखकर प्रणाम करती है ॥ ५ ॥

प्रतिपदमिदमपि निगदति माधव तव चरणे पतिताहम्
त्वयि विमुखे मयि सपदि सुधानिधिरपि तनुते तनु-
दाहम् ॥ सा विरहे० ॥ ६ ॥

और नम्र होकर राधा यह कहती है कि, हे माधव ! मैं तुम्हारे चरण कमल में पतित होकर प्रार्थना करती हूँ कि, तुम्हारे वियोग होने पर आज सुधानिधि भी यह चन्द्रमा मेरे शरीर को दग्ध कर रहा है ॥ ६ ॥

ध्यानलयेन पुरः परिकल्प्य भवन्तमतीव दुरापम् ॥
विलपति हसति विषीदति रोदिति चञ्चति मुञ्चति
तापम् ॥ सा विरहे० ॥ ७ ॥

हे कुञ्जविहारी ! राधाजी किसी २ समय आपके स्वरूप का ध्यान करके और आपकी मनोहर मूर्ति को प्रत्यक्ष की भाँति देखकर अत्यन्त विलाप करती है और कभी आपको देखकर हँसा करती है, किसी समय आपके वियोग जनित दुःख से अत्यन्त रुदन करती है और आपसे मिलने के लिये इस निकुञ्ज में इधर-उधर बावली की भाँति घूमा करती है, किसी समय आपके ध्यान में मग्न होकर आपकी नटवर मूर्ति के साथ विलाप कर आनन्द को भी प्राप्त होती है, अर्थात् इसी व्याज से चिन्तारूपी ताप को दूर करती है ॥ ७ ॥

श्री जयदेवभणितमिदमधिकं यदि मनसा नटनीयम् ।
हरिविरहाकुलवल्लवयुवतिसखीवचनं पठनीयम् ॥
सा विरहे ॥ ८ ॥

हे प्यारे भक्तों ! यदि अपने अन्तःकरण को आनन्द में मग्न किया चाहो तो इस जयदेव रचित राधा वियोग के गीत का पाठ करो ॥ ८ ॥

आवासो विपिनायते प्रियसखीमालापि जालायते
तापोऽपि श्वसितेन दावदहनज्वालाकलापायते ॥
सापि त्वद्विरहेण हन्त हरिणीरूपायते हा कथम् ।
कन्दर्पोऽपि यमायते विरचयञ्छार्दूलविक्रीडितम् ॥

हे माधव ! दुर्भाग्य वश जैसे हरिणी सिंह से डरकर जलते हुए वनमें प्रवेश कर जाल में बँध जाती है, उसी भाँति राधाजी इस समय आपके विरह से हरिणी के सदृश हो गई हैं । उनका निवास स्थान ज्वलित वन के तुल्य है, सब सखियाँ जाल की भाँति हैं, श्वाँस ही शरीर को जला रहा है और दुष्ट कामदेव हरिणी रूप राधा के पीछे शार्दूल रूपी यमराज होकर आपके वियोग में उसे मारना चाहता है ॥ १ ॥

देशाख्य एकतालिताले अष्टपदी ॥ १ ॥

स्तनविनिहितमपि हारमुदारम् । सा मनुते कृशतनु-
रतिभारम् ॥ राधिकाविरहे तव केशव माधव
वामन विष्णो ॥ ३० ॥ १ ॥

समेतम्]

चतुर्थः सर्गः

३७

हे केशव ! हे माधव ! हे विष्णो ! आपके विरह से व्याकुल वह राधा कृश (दुर्बल) शरीर के स्तनों पर रखे हुए उत्तमोत्तम हार को भार के समान मानती है ॥ १ ॥

सरसमसृणमपि मलयजपङ्कम् ।

पश्यति विषमिव वपुषि सशङ्कम् ॥ राधिका० ॥ २ ॥

हे माधव ! आपके विरह से दुःखित वह राधा मलयागिरि के ओढ़े (गीले) चन्दन को भी विषवत् मानती है ॥ २ ॥

श्वसितपवनमनुपमपरिणाहम् ।

मदनदहनमिव वहति सदाहम् ॥ राधिका० ॥ ३ ॥

हे कृष्ण ! वह राधा अत्यन्त लम्बी श्वाँसों को आपके विरह में कामाग्नि के समान धारण करती है । अभिप्राय यह कि उसे वह श्वाँस भी जलाये देती है ॥ ३ ॥

दिशि दिशि किरति सजलकणजालम् ।

नयननलिनमिव विगलितनालम् ॥ राधिका० ॥ ४ ॥

हे माधव ! राधाजी के कमलनयन मृणाल से रहित नीर भरे कमल की भाँति चारों ओर देख कर अश्रु पात करते हैं ॥ ४ ॥

नयनविषयमपि किसलयतल्पम् ।

कलयति विहितहुताशविकल्पम् ॥ राधिका० ॥ ५ ॥

हे कृष्ण ! वह राधा आपके वियोग में देखती हुई भी पल्लवों से बनी शय्या को सन्देह वश अग्नि के समान मानती है ॥ ५ ॥

त्यजति न पाणितलेन कपोलम् ॥

बालशशिनमिव सायमलोलम् ॥ राधिका० ॥ ६ ॥

हे कुञ्जविहारी ! वह राधा हथेली पर कपोल को रखकर बैठी है, उसका मुख सायंकाल के बाल चन्द्र की भाँति मालूम होता है ॥ ६ ॥

हरिरिति हरिरिति जपति सकामम् ।

विरहविहितमरणेव निकामम् ॥ राधिका० ॥ ७ ॥

हे श्रीकृष्णजी ! वह राधा आपके वियोगसे अपने मरण का निश्चय करके हरि-हरि शब्द जपती है। अभिप्राय यह कि, अपना अन्त समय जान कर भगवद् भजन करती है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमिति गीतम् ॥

सुखयतु केशवपदमुपनीतम् ॥ राधिका० ॥ ८ ॥

जयदेव कवि रचित यह राधा के विरह का वर्णन भक्तजनों को सुखद हो ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे नवमः प्रबन्धः

सा रोमाञ्चति सीत्करोति विलपत्युत्कम्पते ताम्यति

ध्यायत्युद्भ्रमति प्रमीलति पतत्युद्याति मूर्च्छत्यपि ॥

एतावत्यतनुज्वरे वरतनुजीवेन्न किन्ते रसात्

स्ववैद्यप्रतिम प्रसीदसि यदि त्यक्तोऽन्यथा हस्तकः ॥ १ ॥

हे हरि ! वह राधा कभी विरह रूप विकार से ज्ञानशून्य हो रही है, कभी शरीर में रोमाञ्च खड़े होने से काँपती है, कभी

समेतम्]

चतुर्थः सर्गः

३९

ग्लानि को प्राप्त होती है, कभी चिन्ता करती है, कभी अत्यन्त भ्रम को प्राप्त होती है, कभी नेत्रों को बंद कर शय्या पर पड़ी रहती है, कभी-कभी इधर-उधर भ्रमवश खड़ी होकर देखती है, कभी मूर्छा को भी प्राप्त होती है, यह सब कामज्वर के चिन्ह राधा को सता रहे हैं । अश्विनीकुमार वैद्य के तुल्य यदि आप प्रसन्न होकर राधा को दर्शन देंगे तो क्या वह शृंगार रस के रससे जीवित न होगी ? अवश्य ही जीवित होगी । यदि वैद्यरूप आप न जायेंगे तो छोड़ दिया गया है हाथ जिसका ऐसी वह राधा अवश्य मृत्युको प्राप्त होगी ॥ १ ॥

स्मरातुरां दैवतवैद्यहृद्य त्वदङ्गसङ्गामृतमात्रसाध्याम्
विमुक्तबाधां कुरुषे न राधामुपेन्द्रवज्रादपिदारुणोऽसि

हे अश्विनीकुमार सदृश वैद्य ! यदि आप अपने शरीरके स्पर्शरूपी औषधि से, कामदेव पीड़ित राधा को अच्छा नहीं करोगे तो हम भली भाँति मालूम कर लेंगी कि, आपका हृदय इन्द्र के वज्र से भी अधिक कठोर है ॥ २ ॥

कन्दर्पज्वरसंज्वराकुलतनोराश्चर्यमस्याश्चिरम् ।

चेतश्चन्दनचन्द्रमाः कमलिनीचिन्तासु सन्ताम्यति ।

किन्तु क्षान्तिवशेन शीतलतनुं त्वामेकमेव प्रियम् ।

ध्यायन्ती रहसि स्थिता कथमपि क्षीणा क्षणं प्राणिति ॥ ३ ॥

हे कृष्ण ! कामज्वर से व्याकुल तथा कृशशरीरवाली राधाका चित्त चन्दन, चन्द्र, और कमलिनी का ध्यान करने परभी सन्तप्त

हो उठता है, फिरभी शीतल देहवाले एक मात्र आपहीका ध्यान करती हुई वह एकान्तमें येन-केन प्रकारेण जीवित है ॥ ३ ॥

क्षणमपि विरहः पुरा न सेहे
नयननिमीलनखिन्नया यया ते ।

श्वसिति कथमसौ रसालशाखां
चिरविरहेण विलोक्य पुष्पिताग्राम् ॥४॥

हे माधव ! भला जिस राधाको पहले, नेत्रोंके पलक गिरने में भी उत्पन्न आपके दर्शनकी बाधा से खेद होता था वही राधा खिली हुई आमकी मंजरी को देखकर कैसे जी सकती है ॥ ४ ॥

वृष्टिव्याकुलगोकुलावनवशादुद्धृत्य गोवर्धनं
विभ्रद्वल्लवसुन्दरीभिरधिकानन्दाचिरं चुम्बितः ।

कन्दर्पेण तदर्पिताधरतटीसिन्दूरमुद्राङ्कितो
बाहुगोपतनोस्तनोतु भवतां श्रेयांसि कंसद्विषः ॥५॥

इति श्रीगीतगोविन्दकाव्ये स्निग्धमाधवो नाम चतुर्थः सर्गः ॥४॥

वर्षासे व्याकुल गोकुलकी रक्षाके हेतु गोवर्द्धन पर्वत को उखाड़कर अपनी कनिष्ठिका अंगुली पर धारणकरनेवाले, ब्रज सुन्दरियों द्वारा आनन्द पूर्वक दीर्घ कालतक चुम्बित और काम के वशीभूत हो गोपियों द्वारा रखे गये अधरोंसे लाल लाल मुद्रा-युक्त भुजाओं के धारण करनेवाले, गोपवेषधारी कंस के शत्रु आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आपका कल्याण करें ॥ ५ ॥

इस प्रकारसे गीतगोविन्द काव्य के स्निग्धमाधव नामक चतुर्थ सर्गकी हिन्दी टीका समाप्त हुई ।

समेतम्]

पञ्चमः सर्गः

४१

पञ्चमः सर्गः

अहमिह निवसामि याहि राधा-

मनुनय मद्वचनेन चानयेथाः ।

इति मधुरिपुणा सखी नियुक्ता

स्वयमिदमेत्य पुनर्जगाद राधाम् ॥१॥

राधाकी भेजी हुई सखी के प्रेमपूर्ण वचन सुनकर श्रीकृष्ण ने उससे कहा — “मैं इसी कुञ्जमें बैठा हूँ आप जाइये और मेरी ओर से राधाको समझ-बुझाकर यहाँपर ले आइये” इस प्रकार श्रीकृष्णसे कही गई सखी राधा से जाकर पुनः बोली ॥१॥

देशवराडिरागे रूपकताले अष्टपदी ॥१०॥

बहति मलयसमीरे मदनमुपनिधाय ।

स्फुटति कुसुमनिकरे विरहिहृदयदलनाय ॥

तव विरहे वनमाली सखि सीदति ॥ ध्रु० ॥१॥

हे राधे ! कामदेवको सहायक बनाकर मलयाचलकी हवा बहने पर और विरहीजनों के हृदयों के विदीर्ण करने के लिये पुष्पों के कलियों के खिलनेपर हे सखि ! आपके विरहमें वनमाली पीडित है ॥ १ ॥

दहति शिशिरमयूखे मरणमनुकरोति ।

पतति मदनविशिखे विलपति विकलतरोऽति तव विर० ॥ २ ॥

हे सखि ! जिससमय चन्द्रमा अपने किरणोंसे श्रीकृष्णको जलाता है, उस समय श्रीकृष्ण मरनेके समय की व्यथा के सदृश पीडित होते हैं और जब कामदेव उनके ऊपर तीक्ष्ण वार चलाता है तब वे अत्यन्त दुःखसे व्याकुल हो विलाप करने लगते हैं ॥ २ ॥

ध्वनति मधुपसमूहे श्रवणमपि दधाति ।

मनसि कलितविरहे निशि निशि

रुजमुपयाति ॥ तव विर० ॥ ३ ॥

हे प्रिये ! भ्रमरों का झुंझार न सुनाई दे इसलिये वे श्रीकृष्ण अपने कानों को बन्द कर लेते हैं और विरहाक्रान्त हृदय में आपके स्मरणसे उनकी व्यथा प्रति रात्रि बढ़ती जा रही है ॥ ३ ॥

वसति विपिनविताने त्यजति ललितधाम ।

लुठति धरणिशयने बहु विलपति तव नाम । तव० । ४ ।

हे सखि ! आपके विरहमें श्रीकृष्ण अपने सुन्दर राजमहल को छोड़कर घोर जङ्गलमें रह रहे हैं पृथिवी पर ही सोते हैं, आपका नाम लेकर बार-बार विलाप करते हैं ॥ ४ ॥

रणति पिकसमुदाये प्रतिदिशमनुयाति ।

हसति मनुजनिचये विरहमपलपति नेति ॥ तव० । ५ ।

हे प्रियतमे ! कोयलोंके “कुहू-कुहू” करने पर श्रीकृष्ण चारों ओर उन्मत्त की भाँति दौड़ते हैं, इसपर जब लोग उनपर हँसते हैं तब श्रीकृष्ण विरहको छिपाते हैं, और कहते हैं की “तुम ऐसा मत समझो” ॥ ५ ॥

समेतम्]

पञ्चमः सर्गः

४३

स्फुरति कलरवरावे स्मरति भणितमेव ।

तव रतिसुखविभवे बहुगणयति गुणामतीव ॥ तव ० ६ ॥

हे सखि ! पक्षियों के मनोहर कलरवको सुनकर श्री कृष्णको आपकी मधुर वाणीका स्मरण आ जाता है और आपकी रतिके आनन्दका काह्पनिक अनुभव कर वे रतिसुखको बार-बार बखाना करते हैं ॥ ६ ॥

त्वदभिधशुभदमासं वदति नरि शृणोति ।

तमपि जपति सरसं परयुवतिषुन रतिमुपैति । तव ० ७ ॥

हे प्रिये ! जब कोई प्राणी आपके नाम वाला मंगलमय वैशाख मास का नाम लेता है तब कृष्ण उसे अति प्रेमके साथ सुनते हैं और जपते हैं, अन्य युवतियों के साथ रति भी नहीं करते ॥ ७ ॥

भणति कविजयदेवे विरहविलसितेन ।

मनसि रभसविभवे हरिरुदयतु सुकृतेन । तव ० ८ ॥

इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान् के वियोगरूपी वर्णनसे आनन्दयुक्त जयदेवकविके अन्तःकरणमें पुण्यसे श्रीकृष्ण प्रकट हों । ८ ।

पूर्वं यत्र समं त्वया रतिपतेरासादिताः सिद्धयस्तस्मिन्नेव निकुञ्जमन्मथमहातीर्थे पुनर्माधवः ।

ध्यायंस्त्वामनिशं जपन्नपि तवैवालापमन्त्रावलिं भूयस्त्वत्कुचकुम्भनिर्भरपरीरम्भामृतं वाञ्छति ॥ ९ ॥

हे राधे ! जिस निकुञ्जमें सर्व प्रथम आपके साथ भगवान्

४४

श्रीगीतगोविन्दम्—

[भाषाटीका-

श्रीकृष्णने कामदेवकी सिद्धियाँ प्राप्त की थीं आज उसी कामदेव के महातीर्थ ऐसे कुञ्जमें बैठकर श्रीकृष्ण दिन-रात आपका ही चिन्तन करते हुए, आपके नामाक्षरों से युक्त मन्त्रों को जपते हैं और अमृत से भरे आपके कुच कलशके दृढालिङ्गनकी अभिलाषा करते हैं ॥ १ ॥

गुर्जररागेण एकतालिताले अष्टपदी ॥ ११ ॥

रतिसुखसारे गतमभिसारे मदनमनोहरवेषम् ॥

न कुरु नितम्बिनि गमनविलम्बनमनुसरतं हृदयेशम् ।

धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली ॥

गोपीपीनपयोधरमर्दनचंचलकरयुगशाली ॥ ध्रु० १ ॥

हे प्रिये ! गोपियोंके पुष्टस्तनों के मलनेमें चञ्चल हाथों वाले वनमाली, जहाँपर मन्द-मन्द पवन चल रहा है ऐसे यमुना के तट पर बैठे हैं । इसलिये हे नितम्बिनि ! रतिके सुखका सार ऐसे अभिसारमें (संकेतस्थानमें) बैठे हुए कामदेवके सदृश सुन्दर अपने प्राणेशके समीप चलनेमें विलम्ब न करिये ॥१॥

नामसमेतं कृतसङ्केतं वादयते मृदुवेणुम् ।

बहु मनुते ननु ते तनुसङ्गतपवनचलितमपि रेणुम् ॥

धीर समीरे० ॥ २ ॥

हे सखी ! श्रीकृष्ण मधुर ध्वनिमें आपके नाम संकेत से संयुक्त वंशी बजा रहे हैं और आपके शरीरके स्पर्श को प्राप्त धूलि भी पवन द्वारा उड़कर उन तक पहुँच रही है, उसके स्पर्श से अपने को धन्य समझते हैं ॥ २ ॥

संगेतम्]

पञ्चमः सर्गः

४५

पतति पतत्रे विचलतिपत्रे शङ्कितभवदुपयानम् ।
 रचयति शयनं सचकितनयनं पश्यति तव पन्थानम्
 धीरसमीरे० ॥ ३ ॥

हे राधे ! पक्षियोंके उड़नेके शब्दको तथा पत्तीकी खड़-खड़ा
 हटको सुनकर श्रीकृष्ण आपके आगमनकी सम्भावना करते हैं
 और चकित होकर आपके आगमन मार्गको देखने लगते हैं तथा
 शय्या सजाने लगते हैं ॥ ३ ॥

मुखरमधीरं त्यज मञ्जीरं रिपुमिव केलिपुलोलम् ।
 चलसखिकुञ्जं सतिमिरपुञ्जंशीलय नीलनिचोलम्
 धीर समीरे० ॥ ४ ॥

हे प्रिये ! शब्दायमान और रतिक्रीडाके समय चञ्चल,
 शत्रुकी तरह इस अपने नूपुरको जल्द से जल्द निकाल दीजिये
 और नीले वस्त्रधारण कर इस घने कुञ्जमें चलिये ॥ ४ ॥

उरसि मुरारेरुपहितहारे घन इव तरलवलाके ॥
 तडिदिव पीते रतिविपरीते राजसि सुकृतविपाके ॥
 धीर स० ॥ ५ ॥

हे पीतवर्णों राधे ! चञ्चल वकुल पंक्ति से युक्त मेघकी तरह
 हीराके हारसे सुशोभित तथा बड़े पुण्य से उपलब्ध श्रीकृष्णके
 वक्षस्थलपर विपरीत रति करके बिजली की तरह आप
 चमकिये ॥ ५ ॥

विगलितवसनं परिहृतशयनं घटयजघनमपिधानम् ॥

४६

श्रीगीतगोविन्दम्—

[भाषाटीका—

किसलयशयने पङ्कजनयनेनिधिमिव हर्षनिधानम् ॥

धीर स० ॥ ६ ॥

हे प्रिये ! कोमल-कोमल पत्तोंके ऊपर सोनेवाले कमल नयन श्रीकृष्णके ऊपर बल्ल और करधनी उतार कर आनन्द का खजाना अपनी जाँघको मिलाइये ॥ ६ ॥

हरिरभिमानीरजनिरिदानीमियमपियाति विरामम् ॥

कुरु मम वचनं सत्वररवनं पूरय मधुरिपुकामम् ॥

धीर स० ॥ ७ ॥

हे राधे ! हरि अभिमानी हैं और इस समय यह रात भी व्यतीत हुई जा रही है, इसलिये मेरे कहे हुए वचनों को शीघ्र सफल कीजिये तथा श्रीकृष्णकी इच्छा पूरी करिये ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवे कृतहरिसेवे भणति परमरमणीयम् ॥

प्रमुदितहृदयं हरिमतिसदयं नमत सुकृतकमनीयम् ॥

धीरसमीरे० ॥ ८ ॥

हरिकी सेवा करने वाले जयदेव कविके गीतके परमरमणीय गानेपर अत्यन्त प्रसन्नचित्तवाले, कृष्णको प्रणाम है ॥ ८ ॥

विकिरति मुहुः श्वासान्नाशाः पुरो मुहुरीक्षते
प्रविशति मुहुः कुञ्जं गुञ्जन् मुहुर्बहु ताम्यति ।
रचयति मुहुः शय्याँ पर्याकुलं मुहुरीक्षते

मदनकदनक्लान्तः कान्ते । प्रियस्तत्र वर्तते ॥ १ ॥

हे प्रिये ! कामपीड़ित आपके प्रिय वारम्बार साँस लेते हैं,

समेतम्]

पञ्चमः सर्गः

४७

पुनः पुनः दिशाओं की ओर देखा करते हैं, बड़बड़ाते हुए बार-बार कुञ्ज में आते-जाते हैं, बारम्बार शय्याकी रचना किया करते हैं और अधीरता से इधर-उधर देखा करते हैं ॥ १ ॥

त्वद्वाक्येन समं समग्रमधुना तिग्मांशुरस्तङ्गतो
गोविन्दस्य मनोरथेन च समं प्राप्तं तमः सान्द्रताम्
कोकानां करुणस्वनेन सदृशी दीर्घा मदभ्यर्थना
तन्मुग्धे विफलं विलम्बनमसौ रम्योऽभिसारक्षणः ॥ २

हे राधे ! आपके उत्तरकी प्रतीक्षाके साथ साथ देखिये, सूर्य भी अस्त होगया, कृष्णके मनोरथके साथ-साथ यह अन्धेरा भी घना हो गया, चक्रवा-चक्रवी के करुण विलाप के सदृश मेरी लम्बी प्रार्थना भी समाप्त हो गयी इसलिये अब हे सुन्दरि ! चलने में विलम्ब करना व्यर्थ है, क्योंकि छिपकर चलनेका यही समय है ॥ २ ॥

आश्लेषादनु चुम्बनादनु नखोल्लेखादनु स्वान्तजा-
त्मोद्बोधानु सम्भ्रमादनु रतारम्भादनु प्रीतयोः ॥
अन्यार्थं गतयोर्भ्रमान्मिलितयोः सम्भाषणैर्जानतोः
दम्पत्योर्निशिकोन कोन तमसि व्रीडाविमिश्रोरसः ॥ ३ ॥

हे सखि ! अन्धेरे के समय स्त्री तथा पुरुषके संकेत स्थान में मिलने पर और परस्पर परिचय होने पर आलिङ्गन, चुम्बन, कुचमर्दन, कुचोंपर नखक्षत, कामोद्दीप्ति उसके पश्चात् रतिका आरम्भ होता है, ऐसे समय लजासंयुक्त दोनों प्रेमी-प्रेमिकाओंको कौन कौन रस प्राप्त नहीं होते ? ॥ ३ ॥

समयचकितं विन्यस्यन्तीं दृशौ तिमिरे पथि
प्रतितरु मुहुः स्थित्वा मन्दं पदानि वितन्वतीम् ॥
कथमपि रहः प्राप्तामङ्गैरनङ्गतरङ्गिभिः
सुमुखि सुभगः पश्यन् सेत्वामुपैतु कृतार्थताम् ॥४॥

हे सुमुखि ! अन्धेरी रातमें भयसे चकित चारों ओर देखने-
वाली वृक्षोंके नीचे बार-बार ठहर-ठहर कर धीरे-धीरे पैरोंको बढ़ाने-
वाली, जिसके सारे शरीर में भगवान् कामदेव व्याप्त हो रहे
हैं ऐसी आपको संकेत स्थलमें देखकर सोभाग्यशाली श्रीकृष्ण
कृत-कृत्य होवेंगे ॥ ४ ॥

राधामुग्धमुखारविन्दमधुगस्त्रौलोक्यमौलिस्थली
नेपथ्योचितनीलरत्नमवनीभारावतारक्षमः ॥

स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरीजनमनस्तोषप्रदोषश्चिरं
कंसध्वंसनधूमकेतुरवतु त्वां देवकीनन्दनः ॥ ५ ॥
इति श्रीगीतगोविन्देऽभिसारिकावर्णने साकांक्ष-
पुण्डरीकाक्षो नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

राधाके सुन्दर मुखरूपी कमलके भ्रमररूप, तीनों लोकों के
मुकुटरूप वेषरचनाके लिये नीलमणिके समान, पृथ्वीका बोझ
हलका करने में समर्थ व्रजकी अङ्गनाओं के चित्तको प्रमुदित
करने के लिये संध्यारूप, कंसके विनाश करनेमें धूमकेतु (पुच्छल
तारा) के समान देवकीनन्दन आपकी रक्षा करें ॥ ५ ॥

इस प्रकारसे गीतगोविन्द काव्यके साकांक्षपुण्डरीकाक्षनामक
पञ्चम सर्ग की हिन्दी टीका समाप्त हुई ॥

अथ षष्ठः सर्गः

आर्या-

अथ तां गन्तुमशक्तां चिरमनुरक्तां लतागृहे दृष्ट्वा ॥
तच्चरितं गोविन्दे मनसिजमन्दे सखी प्राह ॥ १ ॥

इसके अनन्तर गमन करनेमें असमर्थ तथा चिरकाल से
अनुरागिणी राधाको लतागृह में देखकर कामदेव से पीड़ित
श्रीकृष्ण से एक सखीने राधाका चरित कहा ॥ १ ॥

गुणकरी रागेण रूपकताले अष्टपदी
पश्यतिदिशि दिशि रहसि भवन्तम् ।
त्वदधरमधुरमधुनि पिबन्तम् ॥

नाथ हरे जय नाथ हरे सीदति राधा वासगृहे ॥ १ ॥

हे नाथ ! आपके अधर-रूपी मधुर मधुको पीती हुई
एकान्त में बैठी हुई राधा प्रति दिशाओं में आपहीको देख रही
है ! हे नाथ, हे हरे ! हे नाथ ! हे हरे ! आपकी जय हो । राधा
वासगृह में आपके लिये दुःखी हो रही है ॥ १ ॥

त्वदभिसरणरभसेन वलन्ती ॥

पतति पदानि कियन्ति चलन्ती ॥ नाथहरे० ॥ २ ॥

हे कृष्ण ! वह राधा आपके विरह में इतनी दुर्बल हो गई
है कि, ज्यों ही वेगसे आपके समीप आने लगती है त्योंही दो
चार कदम चलकर गिरने लगती है ॥ २ ॥

विहितविशदविसकिसलयवलया ॥

जीवति परमिह तत्र रतिकलया ॥ नाथहरे० ॥३॥

हे कृष्ण ! सफेद कमलनाल तथा नवीन पल्लवके कड़े पहि-
ननेवाली वह राधा एकमात्र आपके रतिके लोभसे जीवित है ॥३॥

मुहुःवलोकितमण्डनलीला ॥

मधुरिपुरहमिति भावनशीला ॥ नाथहरे० ॥ ४ ॥

हे नाथ ! वह राधा आपके समान अपने वेष की रचनाकर
अत्यन्त अनुरागसे पुनः-पुनः अपने आभूषणों की शोभाको निहा-
रती है तथा 'मैं ही कृष्ण हूँ' इस प्रकारकी भावना करती है ॥४॥

त्वरितमुपैति न कथमभिसारम् ॥

हरिरिति वदति सखीमनुवारम् ॥ नाथहरे० ॥५॥

हे भगवन् ! वह राधा अपनी सखीसे बार-बार यह कहती
है कि, हरि अभिसार (संकेतस्थान) में जल्दी क्यों नहीं
आ रहे हैं ? ॥ ५ ॥

श्लिष्यति चुम्बति जलधरकल्पम् ॥

हरिरुपगत इति तिमिरमतल्पम् ॥ नाथहरे० ॥६॥

हे मधुरिपो ! वह राधा मेघके समान प्रगाढ़ अन्धकारको
देख आपहीको आया हुआ समझ आलिङ्गन तथा चुम्बन
करती है ॥ ६ ॥

भवति विलम्बिनि विगलितलज्जा ॥

विलपति रोदति वासकसज्जा ॥ नाथहरे० ॥७॥

संगेतम्]

पद्यः सर्गः

५१

हे कंसरियो ! आपके विलम्ब करने पर वासकसज्जाकी
भाँति राधा निर्लज्ज होकर रोती तथा विलाप करती है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवकवेरिदमुदितम् ॥

रसिकजनं तनुतामतिमुदितम् ॥ नाथहरे ० ॥ ८ ॥

जयदेवकविकृत यह गीत रसिकजनों के आनन्द को बढ़ावे ॥ ८ ॥

विपुलपुलकपालिः स्फीतसीत्कारमन्त-

र्जनितजडिमकाकुव्याकुलं व्याहरन्ती ॥

तत्र कितव ! विधायामन्दकर्णचिन्तां

रसजलधिनिमग्ना ध्यानलग्ना मृगाक्षी ॥ १ ॥

हे धूर्त ! आपका ध्यान करनेवाली और शृङ्गारादि रस रूपी
समुद्रमें डुबकी लगानेवाली वह मृगनयनी राधा, कभी (ध्यान
करते समय) अत्यधिक कामकी चिन्तासे आपका शरीर स्पर्श
हुआ ऐसा समझ कर रोमाञ्चित हो उठती है, आपने अधर
चुम्बन किया ऐसा समझकर सी-सी करती है, कभी जड़त्वके
प्रादुर्भाव होने से वह व्याकुल होने लगती है ॥ १ ॥

अङ्गवाभरणं करोति बहुशः पत्रेऽपि संचारिणि,
प्राप्तं त्वां परिशङ्कते वितनुते शय्यां चिरं ध्यायता ॥

इत्याकल्पविकल्पतत्परचनासङ्कल्पलीलाशत-
व्यासक्तापि विना त्वया वरतनुनैषा निशां नेष्यति ॥ २ ॥

हे कृष्ण ! पत्तों तककी खड़-खड़ाहट सुनकर वह राधा
अपने अंगोंमें आभूषणों को धारण करने लगती है, ऐसा समझ

कर कि, आप आ रहे हैं, शय्याको सजाने लगती है; एक ध्यान-मग्न होकर अनेकों विचारों को करने लगती है, परन्तु बिना आपके उसकी रात नहीं कटती ॥ २ ॥

किं विश्राम्यसि कृष्णभोगिभवने भांडीरभूमिरुहि
 आतर्यासि न दृष्टिगोचरमितः सानन्दनन्दास्पदम् ॥
 राधाया वचनं तदध्वगमुखान्नन्दान्तिके गोपतो
 गोविन्दस्यजयन्ति सायमतिथिप्राशस्त्यगर्भागिरः ॥ ३ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे वासकसज्जावर्णने सोत्कण्ठधन्य-

वैकुण्ठो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

हे पथिक ! कृष्णसर्पके भवन इस वट वृक्षके नीचे क्यों विश्राम करते हो ! यहाँ तो कृष्ण—सर्पका निवास स्थान है । क्या-भाई ! आपको नन्दबाबाका आनन्द भवन नहीं दिखलाई पड़ता ! इस प्रकार राधा द्वारा कहे हुए वचनोंको पथिक के मुखसे सुनकर; नन्दबाबाके सम्मुख अपनी कलाई खुलने के भयसे उन वचनोंको छिपानेवाले श्रीकृष्णने पथिकसे कहा—आइये, आपका स्वागत है, इत्यादि कहकर वह बात उड़ादी । इस तरह श्रीकृष्णसे कथित वाणी जययुक्त हो ॥ २ ॥

इस प्रकारसे गीतगोविन्द काव्यके सोत्कण्ठवैकुण्ठनामक षष्ठ सर्गकी हिन्द टीका समाप्त हुई ।

अथ सप्तमः सर्गः



अत्रान्तरे च कुलटा कुलवर्त्मपात-

सञ्जात पातक इव स्फुटलाञ्छन श्रीः ॥

चृन्दावनान्तरमदीपयदंशुजालै-

र्द्विक्सुन्दरीवदनचन्दनविन्दुरिन्दुः ॥ १ ॥

इसी समय व्यभिचारिणी स्त्रियोंके मार्गको रोकनेसे उत्पन्न पापके कारणही मानों स्पष्ट कलङ्कित तथा पूर्वदिशारूपी रमणीमुखके चन्दन—विन्दुके सदृश चन्द्रमाने अपनी किरणोंसे चृन्दावनको प्रकाशित कर दिया ॥ १ ॥

आर्या

प्रसरति शशधरबिम्बे विहितविलम्बे च माधवे विधुरा
विरचितविविधविलापं सा परितापं चकारोच्चैः ॥

चन्द्रबिम्बके फैल जानेपर और श्रीकृष्णके देर होनेपर वह विरहिणी राधा, नाना प्रकारसे, जोर-जोरसे विलाप करने लगी । २।

गौडमालवरागे यतिताले अष्टपदी

कथितसमयेऽपि हरिरहह न ययौ वनम् ।

मम विफलमेतदनुरूपमपि यौवनम् ॥

यामि हे कमिह शरणं सखी जनवचनवञ्चिता ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

राधाने कहा-कहे हुए समय पर भी कृष्ण वनमें नहीं आये, यह बड़े दुःख की बात है। मेरा यह रूपके अनुसार यौवन भी वृथा है, सखियों से ठगी गयी मैं अब किसकी शरणमें रहूँ अथवा जलाश्रय लेना ही उचित है। (डूब मरना चाहिये) ॥ १ ॥

यदनुगमनाय निशि गहनमपि शिलितम् ॥

तेन मम हृदयमिदमसमशरकीलितम् ॥यामि०॥२॥

जिन श्रीकृष्ण के लिये मैंने रात्रि के समय इस घोर जंगल में वास किया, उन्हीं श्रीकृष्णने मेरे हृदय में कामदेव के असह्य बाणों को गाड़ दिया ॥ २ ॥

मम मरणमेव वरमिति वितथकेतना ॥

किमिति विषहामि विरहानलमचेतना ॥यामि०॥३॥

इस जंगलमें अब मैं ज्ञान शून्य होकर विरहकी आग कैसे सह सकती हूँ, मेरा यह शरीर भी वृथा है इससे मृत्यु कहीं अच्छी है ॥ ३ ॥

मामहह विधुरयति मधुरमधुयामिनी ॥

कापि हरिमनुभवति कृतसुकृतकामिनी ॥यामि०॥४॥

अत्यन्त खेद है कि, मनोहर वसन्तकी ये रात्रियाँ मुझे दुःख दे रही हैं और ये ही रात्रियाँ अन्य गोपाङ्गनाको जिसने पुण्य किया है, श्रीकृष्णके साथ आनन्द का अनुभव करा रही हैं ॥ ४ ॥

अहह कलयामि वलयादिमणिभूषणम् ॥

हरिविरहदहनवहनेन बहुदूषणम् ॥ यामि० ॥५॥

समेतम्]

सप्तमः सर्गः

५५

हन्त, श्रीकृष्णके विरहमें रत्न जड़े कङ्कण आदि आभूषण
दूषण तुल्य हैं । अर्थात् बिना पतिके मेरा सारा शृङ्गार व्यर्थ है । ५।

कुसुमसुकुमारतनुमतनुशरलीलया ॥

स्रगपि हृदि हन्ति मामतिविषमशीलया ॥यामि०॥६॥

कामदेवके बाणों की लीलासे फूलोंके समान कोमल
शरीरवाली मुझे, स्वभावसे ही मृदु यह पुष्पमाला असह्य आघात
पहुँचाती है ॥ ६ ॥

अहमिह निवसामि न गणितवनवेतसा ॥

स्मरति मधुसूदनो मामपि न चेतसा ॥यामि०॥७॥

मैं तो प्यारे कृष्णके लिये जंगल और बेटों की परवह न
कर यहाँ रह रही हूँ, किन्तु मधुसूदन मुझे हृदयसे भी नहीं
स्मरण करते ॥ ७ ॥

हरिचरणशरणजयदेवकविभारती ॥

वसतुहृदियुवतिरीव कोमलकलावती ॥यामि०॥८॥

कोमल कलासे युक्त, श्रीकृष्णके चरण की शरणवाली
जयदेव कवि की यह बाणी आपके हृदय में शृङ्गारकी समस्त
कलाओं से युक्त युवतियों की तरह बसे ॥ ८ ॥

तत्किं कामपि कामिनीमभिसृतः किं वा कलाकेलिभि-
र्बद्धो बन्धुभिरन्धकारिणि वनोपान्ते किमुद्घाम्यति ।

कान्तः क्लान्तमना मनागपि पथि प्रस्थातुमेवाक्षमः
संकेतीकृतमञ्जुवञ्जुललताकुञ्जेऽपि यन्नागतः ॥१॥

सङ्केतस्थानमें कृष्णके न आनेपर राधा सोचने लगीं-क्या प्रियतम अन्य कामिनीके पास तो नहीं चले गये ? अथवा मित्रों के हास क्रीडामें तो नहीं फँस गये ? अथवा इस अरण्यमें अन्धेरेके कारण इतस्ततः भूलकर कहीं भटकते तो नहीं हैं ? अथवा मेरी भाँति वियोगी होकर चलनेमें असमर्थ तो नहीं हो गये ? जैसे कि संकेत होने पर भी उनके वियोगसे एक पग भी मैं नहीं चल सकती वैसे ही वह भी हो गये क्या ? ॥ १ ॥

अथागतां माधवमन्तरेण सखीमियं वीक्ष्य विषादमूकाम्
विशङ्कमाना रमितं कयापि जनार्दनं दृष्ट्व ददेत दाह ॥ २ ॥

इसके बाद कार्यकी सिद्धि न होनेके कारण दुःखी तथा मौन होकर अकेली आती हुई सखीको देखकर क्या, कृष्ण किसी अन्य गोपाङ्गनाके साथ तो नहीं रमण करते हैं ? ऐसा प्रत्यक्ष देखे हुए की तरह राधाने कहा ॥ २ ॥

वसन्त रागे एकतालीताले अष्टपदी

स्मरसमरोचितविरचितवेशा ॥

गतितकुसुमदलविलुलितकेशा ॥

कापि चपला मधुरिपुणा ।

विलसति युवतिरधिकगुणा ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे प्रिये ! कामदेवके साथ युद्ध करनेके अनुरूप रचे हुए वेष वाली इधर-उधर गिरे हुए वानों के फूलोंवाली हमसे अधिक सुन्दरी कोई चपल कामिनी कृष्णके साथ रमण कर रही है क्या ? ॥ १ ॥

हरिपरिरम्भणवलितविकारा ॥

कुचकलशोपरि तरलितहारा ॥ कापि च० ॥ २ ॥

हे सखि ! श्रीकृष्ण के आलिङ्गन से उत्पन्न अनुराग वाला तथा कलशके समान कुचोंके ऊपर हिलते हुए हारवाली कोई कामिनी कृष्णके साथ विलास कर रही है क्या ? ॥ २ ॥

विचलदलकललिताननचन्द्रा ॥

तदधरपानरभसकृततन्द्रा ॥ कापि च० ॥ ३ ॥

हे प्रिये ! जिनके मुख चन्द्रपर चंचल अलकें शोभित हो रही हैं तथा प्रिय द्वारा अधरपानसे जिसे आलस्य आ रहा है, ऐसी किसी रमणीके साथ कृष्णचन्द्र रमण कर रहे हैं ? ॥ ३ ॥

चञ्चलकुण्डलदलितकपोला ॥

मुखरितरशनजघनगतिलोला ॥ कापि च० ॥ ४ ॥

चञ्चल कुण्डलों की रगड़से जिसके कपोल घिस गये हैं, ऐसी और झन-झन शब्द करनेवाली करधनी युक्त कमरकी चञ्चल चालवाली कोई व्रजवनिता कृष्णके साथ आनन्द कर रही है ? ॥ ४ ॥

दधितविलोकितलज्जितहसिता ।

बहुविधकूजितरतिरसरसिता ॥ कापि च० ॥ ५ ॥

हे प्रिये ! रति क्रीडाके समय अनेक प्रकार की मधुर बातों को करती हुई श्रीकृष्णके अवलोकनसे लज्जा भावको प्राप्त और मुसुकाती हुई कोई गोप-ललना कृष्णके साथ रमण कर रही है ? ॥ ५ ॥

विपुलपुलकपृथुवेपथुभंगा ।

श्वसितनिमीलितविकसदनंगा ॥ कापि च० ॥ ६ ॥

हे सखी ! रतिश्रमसे उत्पन्न श्वांस लेनेवाली तथा नेत्रोंको बंद करनेसे जिसके प्रत्यङ्गमें काम भाव व्याप्त हो गया है, एवं रतिके आनन्दसे अत्यधिक रोमाञ्चित शरीरवाली कोई ब्रजवनिता कृष्णके साथ विहार कर रही है ? ॥ ६ ॥

श्रमजलकणभरसुभगशरीरा ।

परिपतितोरसिरतिरणधीरा ॥ कापि च ॥ ७ ॥

रति-श्रमसे उत्पन्न पसीनेके बिन्दुओंसे सुन्दर शरीरवाली तथा रतिके समय पतिके वक्षःस्थल पर सोनेवाली, रतिरूप समर में अति गम्भीर कोई ब्रजांगना कृष्णके साथ आनन्द कर रही है ? ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमतिललितम् ।

कलिकलुषं शमयतु हरिरमितम् ॥ कापि च० ॥ ८ ॥

अतिसुन्दर जयदेव कविकृत हरिके रमणका वर्णन कलियुगी पापों को शान्त करे ॥ ८ ॥

विरहपाण्डुमुरारिमुखाम्बुज-

द्युतिरयं तिरयन्नपि वेदनाम् ।

विधुरतीव तनोति मनोभुवः ।

सुहृदये हृदये मदनव्यथाम् ॥ १ ॥

हे सुहृदये ! मेरे विरह से पीले रङ्गवाले श्रीकृष्णके मुखकम-

समेतम्]

सप्तमः सर्गः

५९

लके सदृश कान्तिवाला कामदेवका मित्र यह चन्द्र आनन्द-प्रद होनेपर भी मेरे चित्तमें काम व्यथा बढ़ाता है ॥ १ ॥

गुर्जररागे एकतालीताले अष्टपदी ॥ १५ ॥

समुदितमदने रमणीवदने चुम्बनवलिताधरे ॥

मृगमदतिलकं लिखति सपुलकं मृगमिव रजनीकरे ।

रमते यमुनापुलिनवने विजयी मुरारिरधुनाध्रु० ॥ १॥

हे प्रिये ! कामसे देदीप्यमान चुम्बन करनेसे संकुचित और सुन्दर ओष्ठों वाली गोप वधूके मुखपर श्रीकृष्ण, दर्पसे कस्तूरी का तिलक करते हैं, जैसे चन्द्रमें मृगचिन्ह है । ऐसे कामक्रीड़ा विजयी आनन्दकन्द कृष्ण इस समय यमुना तीरवाले उपवनमें रमण कर रहे हैं ॥ १ ॥

घनवयरुचिरे रचयति चिकुरे तरलित तरुणानने ॥

कुरुबककुसुमं चपलासुषुमं रतिपतिमृगकानने ॥

रमते य० ॥ २ ॥

हे सखि ! मेघोंके झुंडके सदृश सुन्दर, युवतियोंके चित्तको चञ्चल करनेवाले, कामदेवरूपी हरिणके वनरूप गोपवनिता की चोटीमें कृष्ण विजलीके समान शोभित पीले-पीले कुरैयाके पुष्प गूथ रहे हैं ॥ २ ॥

घटयति सुघने कुचयुगगगने मृगमदरुचिरूपिते ॥

मणिसरममलन्तारकपटलनखपदशशि भूषिते।रमते०॥३॥

हे प्रिये ! कस्तूरी की धूलिसे धूसरीत उत्तङ्गकुचों पर

६०

श्रीगीतगोविन्दम्-

[भाषाटीका-

नखरूपी चन्द्रसे युक्त श्रीकृष्ण निर्मल मणियोंकेहाररूपी तारागणों
को पहिनाते हैं ॥ २ ॥

जितबिसशकले मृदुभुजयुगले करतलनलिनीदले ॥
मरकतवलयं मधुकरनिचयं वितरति हिमशीतले ॥
रमते य० ॥ ४ ॥

हे सखि ! श्रीकृष्ण भगवान् कमलदण्ड की कोमलताको
जीतनेवाले नलिनीदल के समान हथेली वाले, हाथों से बरफके
समान शीतल ऐसी कोमल भुजाओं में पन्ना रत्न जड़े कंकण
पहिना रहे हैं ॥ ४ ॥

रतिगृहजघने विपुलापघने मनसिजकनकासने ॥
मणिमयरशनं तोरणहसनं विकिरति कृतवासने ॥
रमते य० ॥ ५ ॥

हे प्रिये ! श्रीकृष्ण कामदेव के लिये सुवर्णके आसन सदृश,
सुवासित, विस्तृत और मोटे-मोटे रतिके निवास स्थानरूपी जघन
स्थलों पर मणिरचित तोरणके समान करधनी पहिना रहे हैं ॥ ५ ॥

चरणकिसलये कमलानिलये नखमणिगणपूजिते ॥
बहिरपवरणं यावकभरणं जनयति हृदि योजिते ॥
रमते य० ॥ ६ ॥

हे प्रिये ! वह श्रीकृष्ण चन्द्रजी, नखरूपी मणियों से सुशोभित
लक्ष्मीके निवासस्थान, कोमल-कोमल पल्लवोंके समान किसी
व्रजांगनाके चरणों को अपने वक्षःस्थलपर रखकर उनमें महावर
लगा रहे हैं ॥ ६ ॥

समेतम्]

सप्तमः सर्गः

६१

रमयति सुभृशं कामपि सुदृशं खलहलधरसोदरे ।
किमफलमवसं चिरमिह विरसं वद सखि विटपोदरे ॥

रमते य० ॥ ७ ॥

हे प्रिये ! जब कि, वह बलरामका छोटाभाई किसी सुनयनी के साथ विहार करता है, तब हे सखि ! बताओ मैं क्यों इस पेड़के नीचे बिना रसके उसकी प्रतीक्षा करूँ ॥ ७ ॥

इह रसभणने कृतहरिगुणने मधुरिपुपदसेवके ।
कलियुगचरितं न वसतु दुरितं कविनृपजयदेवके ॥

रमते य० ॥ ८ ॥

शृङ्गार रसका वर्णन करनेवाले, हरि-गुण-गन करनेवाले श्रीकृष्णके चरण-सेवक, जयदेव कविके अन्तःकरणमें कलियुगके पापचरित का वास न हो ॥ ८ ॥

नायातः सखि निर्दयो यदि शठस्त्वं दूति किं दूयसे ।
स्वच्छन्दं बहुवल्लभः स रमते किं तत्र ते दूषणम् ॥
पश्याद्य प्रियसङ्गमाय दयितस्याकृष्यमाणं गुणै-
रुत्कण्ठातिभरादिव स्फुटदिदं चेतः स्वयं यास्यति । १ ॥

हे सखि दूति ! यदि वे निर्दयी ठग कृष्णचन्द्र नहीं आये तो इसमें क्यों दुःखी हो रही है, क्योंकि वे तो अनेकों-महिलाओं वाले हैं, उनके साथ स्वेच्छासे रमण करते हैं, इसमें तेरा क्या दोष ! देख, आज उस प्रियतम कृष्णके गुणों के वशीभूत होकर यह चित्त उत्कंठासे स्वयंही उनके समीप मिलने जायगा ॥ १ ॥

देशांकरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ १६ ॥

अनिलतरलकुवलयनयनेन ।

तपति न सा किसलयशयनेन ।

सखि या रमिता वनमालिना ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे सखि ! पवनसे चलायमान कमलके समान नेत्रवाले वन मालीके साथ जिस युवतीने विहार किया, वह कोमल-कोमल पल्लवों की शय्यापर सोने से दुःखी नहीं होती ॥ १ ॥

विकसितसरसिजललितमुखेन ।

स्फुटति न सा मनसिजविशिखेन ॥ सखि० ॥ २ ॥

हे आलि ! खिले हुए कमलके समान मुखवाले श्रीकृष्णके साथ सम्भोग करनेवाली व्रजवनिता, कामवाणोंसे पीड़ित नहीं होती ॥ २ ॥

अमृतमधुरमृदुतरवचनेन ॥

ज्वलति न सा मलयजपवनेन ॥ सखि या० ॥ ३ ॥

हे प्रिये ! अमृतके समान मधुर और कोमलभाषी कृष्णके साथ विहार करनेवाली व्रजवनिता मलयाचलकी हवा से कभी सताई नहीं जाती ॥ ३ ॥

स्थलजलरुहरुचिकरचरणेन ॥

लुठति न सा हिमकरकिरणेन ॥ सखि या० ॥ ४ ॥

हे सखि ! स्थलकमलके समान सुन्दर हाथ पैर वाले कृष्ण के साथ आनन्दानुभव करनेवालीको चन्द्रमाकी शीतल किरणों कभी नहीं सताती ॥ ४ ॥

समेतम्]

सप्तमः सर्गः

६३

सज जलदसमुदयरुचिरेण ॥

दलति न सा हृदि विरहभरेण ॥ सखि या० ॥ ५ ॥

हे प्रिये ! जलपूर्ण मेघके सदृश वर्णवाले श्रीकृष्णके साथ जिस रमणीने रमण किया उसे चिरकालके त्रियोगकी व्यथा नहीं पीड़ा देती ॥ ५ ॥

कनकनिकषरुचिशुत्रिवसनेन ॥

श्वसिति न सा परिजनहसनेन ॥ सखि या० ॥ ६ ॥

हे आलि ! सुवर्णके समान पीताम्बरधारीकृष्णके साथ सम्भोग करनेवाली को सखियों के ताना मारने से दुख नहीं होता ॥ ६ ॥

सकलभुवनजनवरतरुणेन ॥

वहति न सा रुजमतिकरुणेन ॥ सखि या० ॥ ७ ॥

हे सखि ! समस्त लोकके लोगों में सर्वश्रेष्ठ तरुण और परम दयालु कृष्णके साथ जिस गोप-वधूने विहार किया उसे काम पीड़ा नहीं सताती ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितवचनेन ।

प्रविशतु हरिरपि हृदयमनेन ॥ सखि या० ॥ ८ ॥

श्रीजयदेवकविके इस प्रकारके वनचों से श्रीकृष्ण भक्तों के हृदयमें प्रवेश करें ॥ ८ ॥

मनोभवानन्दन चन्दनानिल

प्रसीद रे दक्षिण मुञ्च वामताम् ।

क्षणं जगत्प्राण विधाय माधवं
पुरो मम प्राणहरो भविष्यसि ॥ १ ॥

हे कामदेव को आनन्दित करनेवाले मलयाचल सम्बन्धी
दक्षिण वायु ! कृपया अपनी कुटिलता त्यागीये, हे जगत्प्राण !
मेरे सामने माधवको उपस्थित कर तब मेरे प्राण हरिये ॥ १ ॥

रिपुरिव सखी संवासोऽयं शिखीव हिमानिलो
विषमिव सुधारश्मिर्यस्मिन् दुनोति मनोगते ॥
हृदयमदये तस्मिन्नेवं पुनर्वलते बलात्
कुवलयदृशां वामः कामो निकामनिरङ्कुशः ॥ २ ॥

हे प्रिये ! जब उस प्रियतम श्रीकृष्ण का स्मरण हो आता
है तब सखियोंके साथ उठना बैठना, शत्रुवत्, ठंडी हवा अग्नि-
वत्, अमृतकिरणधारी चन्द्र विषवत्, अति क्लेशकारी मालूम
पड़ते हैं इतना होनेपर भी, उसी निर्दयी कृष्णकी याद आ जाने
पर मेरा चित्त उनकी ओर झुक जाता है । वास्तवमें मृगनयनियों
के लिये कामदेव अत्यन्त दुष्ट तथा निरङ्कुश है ॥ २ ॥

बाधां विधेहि मलयानिल पञ्चबाण
प्राणान् गृहाण न गृहं पुनराश्रयिष्ये ।
किं ते कृतान्तभगिनि क्षमया तरङ्गै—
रङ्गानि सिञ्च मम शाम्यतु देहदाहः ॥ ३ ॥

हे मलयाचलके पवन ! आप मुझे अपनी इच्छानुसार खूब
सता लीजिये, हे पञ्चबाण ! (कामदेव) आप भी मेरे प्राणों

समेतम्]

५

अष्टमः सर्गः

[६५]

को हर लीजिये, मैं अब जीतेजी घर वापस नहीं जऊँगी । हे यमराजकी बहिन, यमुने ! आप मुझपर क्यों क्षमा करती हैं ! आप अपनी तरङ्गोंसे मेरे अंगोंको सींचे, जिससे मेरे शरीरका दाह सदा के लिये दूर हो जाय ॥ ३ ॥

सान्द्रानन्दपुरन्दरादिविषद्वृन्दैरमन्दादरा-
दानन्दैर्मुकुटेन्द्रनीलमणिभिः सन्दशितेन्दीवरम् ॥
स्वच्छन्दं मकरन्दसुन्दर गलन्मन्दाकिनीमेदुरं
श्रीगोविन्दपदारविन्दमशुभस्कन्दाय ववन्दामहे ॥
इति श्रीगीतगोविन्दे नागरनारायणो नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अत्यधिक आनन्दसे युक्त इन्द्रादि देवगण रत्न जड़े मुकुटों से बड़े आदर के साथ जिन भगवान् श्रीकृष्णके चरणों को स्पर्श करते हैं और अपनी इच्छानुसार जिन भगवान् श्रीकृष्णके चरण कमलोंके परागसे गंगाजल सदा व्याप्त रहता है, अशुभ नाशके लिये उनके पदारविन्दको प्रणाम है ।

इस प्रकार गीतगोविन्दकाव्यके नागर नारायण नामक सप्तम सर्गकी टीका समाप्त हुई ।

अष्टमः सर्गः

अथ कथमपि यामिनीं विनीय

स्मरशरजर्जरितापि सा प्रभाते ।

अनुनयवचनं वदन्तमग्रे

प्रणतमपि प्रियमाह साभ्यसूयम् ॥ १ ॥

इसके बाद किसी तरह रात बिताकर कामवाणोंसे पीड़ित होने पर भी वह राधा, प्रातःकाल आकर विनय पूर्वक सान्त्वना वचन से बोलने वाले और पैरों पर पड़नेवाले अपने प्रिय श्री कृष्ण से इर्ष्यायुक्त होकर बोली ॥ १ ॥

भैरवी रागे रूपकताले अष्टपदी ॥ १७ ॥

रजनिजनितगुरुजागररागकषायितमलसनिमेषम् ।
वहतिनयनमनुरागमिव स्फुटमुदितरसाभिनिवेशम् ॥
हरि हरि याहि माधव याहि केशव मा वद कैतववादम्
तामनुसर सरसीरुहलोचन या तव हरति विषादम् ।

॥ ध्रु० १ ॥

रात्रिके जागरणसे उत्पन्न थकावटके कारण आपके नेत्र लाल-लाल हो रहे हैं और पलक अलक्ष्य से भरे दिखाई देते हैं जिससे स्पष्ट प्रकट है कि, किसी नायिकाके शृङ्गाररसका अनुराग इन नेत्रों में भरा हुआ है । अतः हे माधव ! आप उसी नायिकाके पास जाइये जो आप पर अनुरक्त है । हे कमलनयन ! आप उसी को अपनाइये जो आपके दुःखको दूर करती है, धूर्तताभरे वाक्यों को मेरे सामने न कहिये ॥ १ ॥

कज्जलमलिनविलोचनचुम्बनविरचितनीलिमरूपम् ।
दशनवसनमरुणं तव कृष्ण तनोति तनोरनुरूपम् ।

॥ हरि० २ ॥

हे कृष्ण ! काजलसे काले-काले नेत्रोंके चुम्बनसे आपके

लमेतम्]

अष्टमः सर्गः

६७

लाल-ओष्ठ नीले पड़ गये हैं और आपकी देहके रङ्गमें मिल गये हैं ॥ २ ॥

वपुरनुहरति तव स्मरसङ्गरखरनखरक्षतरेखम् ।
मरकतशकलकलितकलधौतलिपेरिवरतिजयलेखम् ।
॥ हरि० ॥ ३ ॥

हे कृष्ण ! कामयुद्धमें तीखे-तीखे नाखूनों के क्षतसे रेखा-युक्त आपका शरीर ऐसा प्रतीत होता है जैसे—पन्नेके टुकड़ों पर सुवर्णाक्षरोंमें रतिजय लेख लिखा गया हो, अर्थात् उस नायिकाने प्रसन्नहो आपको खूब नोचा है, जिससे आपके शरीरमें विजय पानेके प्रमाणकी भाँति ये नखक्षत दिखाई दे रहे हैं, इसलिये हे नाथ ! आप उसीके पास जाइये ॥ ३ ॥

चरणकमलगलदलक्तकसिक्तमिदंतव हृदयमुदारम् ।
दर्शयतीव बहिर्मदनद्रुमनवकिसलयपरिवारम् हरि० ४

हे कृष्ण ! उस नायिकाके चरणकमलोंसे निकले महावर से साँचा हुआ यह आपका उदार हृदय ऐसा दिखाई देता है मानों मदनरूपी वृक्ष के पत्तों का समूह बाहर आ गया हो । इसलिये आप उसीके पास जाइये ॥ ४ ॥

दशनपदं भवदधरगतं मम जनयति चेतसि खेदम् ।
कथयति कथमधुनापि मया सह तव वपुरेतदभेदम्
॥ हरि० ॥ ५ ॥

हे कृष्ण ! आपके ओष्ठों पर परकीया अंगना से किये हुए दन्तक्षतको जब मैं देखती हूँ तब मेरे चित्तमें अत्यन्त खेद

६८

श्रीगीतगोविन्दम्—

[भाषाटीका-

होता है, इतना होनेपर भी क्या आप हममें तथा तुममें अभेद है ऐसा कह सकते हैं ! ॥ ५ ॥

बहिरिव मलिनतरं तव कृष्णमनोऽपि भविष्यतिनूनम् ।
कथमथ वञ्चयसे जनमनुगतमसमशरज्वरदृनम् हरि०

हे कृष्ण ! मुझे ऐसा मालूम होता है कि, जैसे आपका शरीर काला है वैसे ही आपका अन्तःकरण भी काला है । नहीं तो आपका ही अनुगमन करनेवाले काम पीड़ित मुझ सरीखे जनको क्यों छलते ! ॥ ६ ॥

भ्रमति भवानबलाकवलाय वनेषु किमत्र विचित्रम् ।
प्रथयतिपूतनिकैववधूवधनिर्दयबालचरित्रम् । हरि० ७ ।

हे कृष्ण ! आप इस जंगलमें अबलाओं को सतानेके लिये भ्रमण करते हैं, इसमें तनिक भी संशय नहीं, क्योंकि निर्दयता पूर्वक स्त्रियों को मारने वाला आपका बालचरित पूतना ने ही प्रकट कर दिया ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितरतिवञ्चितखण्डितयुवतिविलापम् ।
शृणुत सुधामधुरं विबुधा विबुधालयतोऽपि दुरापम् ॥ हरि० ॥ ८ ॥

हे पण्डित जनों ! जयदेवकवि विरचित सम्भोगशृंगार से वञ्चित खण्डिता नायिकाका विरह-विलाप सुनिये, अमृतके समान मधुर यह कृष्ण-चरित स्वर्गमें भी दुर्लभ है ॥ ८ ॥

तवेदं पश्यन्त्याः प्रसरदनुरागं बहिरिव
प्रियापादालक्तच्छुरितमरुणच्छायहृदयम्

समेतम्]

अष्टमः सर्गः

६९

ममाद्य प्रख्यातप्रणयभरभङ्गेन कितव !

त्वदालोकः शोकादपि किमपि लज्जां जनयति ॥ १ ॥

हे धूर्त ! अन्य गोपवधू के पैरोमें लगे हुए महावरसे आपका अन्तःकरण बाहरी अनुराग से ही रञ्जित ज्ञात होता है । और आपके इस कृत्रिम प्रेमको जानकर जगत्प्रसिद्ध आपके विपुल अनुरागके नाशके भयसे आपका दर्शन, शोकसे मुझे लज्जित करता है ॥ १ ॥

प्रातर्नीलनिचोलमच्युतउरः सम्वीतपीतांशुकं

राधायाश्चकितं विलोक्य हसति स्वैरं सखीमण्डले ॥

ब्रीडाचञ्चलमञ्चलं नयनयोराधाय राधानने

स्मेरस्मेरमुखोऽयमस्तु जगदानन्दाय नन्दात्मजः ॥ २ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे खण्डितावर्णने विलक्षणलक्ष्मीपति—

र्नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

प्रातःकाल नीले रंगके वस्त्रोंको धारणकिये कृष्णको और पीताम्बर से आच्छादित राधाके वक्षःस्थलको देखकर सखियोंमें आश्चर्यकी सीमा न रही, तत्काल, लज्जायुक्त मन्द हास्यसे पूर्ण चञ्चल नयन कोरों द्वारा राधाके मुखकमलकी ओर निहारने वाले नन्द के पुत्र संसार के आनन्दके लिये हों ॥ २ ॥

इस प्रकार गीतगोविन्दकाव्यकी भावपूर्ण

अष्टम सर्गकी टीका समाप्त हुई ।

नवमः सर्गः



अथ तां मन्मथखिन्नां रतिरसभिन्नां विवादसम्पन्नाम्
अनुचिन्तितहरिचरितांकलहान्तरितामुवाचरहःसखी

इसके बाद कामज्वरसे पीड़ित, रतिसुखरहित, अत्यन्त दुःखित, श्री कृष्णके चरितको निरन्तर स्मरणकरनेवाली, कलहान्तरिता (पतिका तिरस्कार कर पश्चात्ताप करनेवाली) राधासे एकान्तमें एक सखी कहने लगी ॥ १ ॥

गुर्जररागे रूपकताले अष्टपदी ॥ १८ ॥

हरिरभिसरति वहति मधुपवने ।

किमपरमधिकसुखं सखि भवने ।

माधवे मा कुरु मानिनि मानमये । ध्रु० ॥ १ ॥

हे मानकरनेवाली राधिके ! अब आप कृष्णके विषयमें मान मत करिये, हे प्रिये ! यह वसन्तकी हवा बहने पर प्रिय कृष्ण स्वयं संकेतस्थलमें आ गये हैं । हे सखि ! क्या घरपर इससे भी अधिक आनन्द मिलेगा ? ॥ १ ॥

तालफलादपि गुरुमतिसरसम् ।

किं विफलीकुरुषे कुचकलशम् ॥ माध० ॥ २ ॥

हे प्रिये ! ताल फलसे भी अधिक बड़े और अति सरस तथा कलशके समान इन स्तनों को क्यों विफल कर रही हो ! ॥ २ ॥

समेतम्]

नवमः सर्गः

७१

कति न कथितमिदमनुपदमविरम् ।

मा परिहर हरिमतिशयरुचिरम् ॥ ॥ माध० ॥ ३ ॥

अयि मानिनि ! मैंने कई बार नहीं कहा था क्या ? कि
 “परम सुन्दर कृष्णका परित्याग न करिये” ॥ ३ ॥

किमिति विषीदसि रोदिषि विकला ।

विहसति युवतिसभा तव सकला ॥ माध० ॥ ४ ॥

हे प्रिये ! अब आप क्यों परवाचाप करती हो ? और
 क्यों व्याकुल होकर रोती हो, देखो यह सारी युवतियाँ आपका
 मजाक उड़ाती हैं ॥ ४ ॥

मृदुनलिनीदलशीतलशयने ।

हरिमवलोकय सफलं नयने ॥ माध० ॥ ५ ॥

हे मानिनि ! कोमल नलिनी के पत्तों से बनी शीतल शय्यापर
 कृष्णको देखकर अपनी आँखों को कृतार्थ करिये ॥ ५ ॥

जनयसि मनसि किमिति गुरुखेदम् ।

शृणु मम वचनमनीहितभेदम् ॥ माध० ॥ ६ ॥

हे प्रिये ! आप अपने मनमें क्यों इस तरह अधिक खेद
 काती हैं, मेरी बातोंको मानिये, मैं आपकी ही बात कहूँगा ॥ ६ ॥

हरिरुपयातु वदतु बहु मधुरम् ।

किमिति करोषि हृदयमतिविधुरम् ॥ माध० ॥ ७ ॥

हे मानिनि ! ऐसा उपाय करिये कि, भगवान् श्रीकृष्ण
 आपके समीप आवें और आप इस तरहसे मीठी—मीठी उनसे
 बातें करें, अपने मनको क्यों क्लेशित कर रही हो ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमतिललितम् ।

सुखयतु रसिकजनं हरिचरितम् । माध० ॥ ८ ॥

जयदेव कविकृत अति सुन्दर श्रीकृष्ण चरित रसिकजनोंको
सुखकारी हो ॥ ८ ॥

स्निग्धे यत्पुरुषासि यत्प्रणमति स्तब्धासि यद्वागिणि
द्वेषस्थासि यदुन्मुखे विमुखतां यातासि तस्मिन्मये ।
तद्युक्तं विपरीतकारिणि तव श्रीखण्डचर्चाविषं
शीतांशुस्तपनोहिमं हुतवहः क्रीडामुदो यातनाः ॥ १ ॥

हे राधे ! आप श्रीकृष्ण के प्रेम करने पर उनसे रूखा
व्यवहार करती हो, उनके नम्र होनेपर कठोर हो जाती हो, उनके
अनुरक्त होनेपर विरक्त होती हो, उनके सामने आनेपर मुँह फेर
खड़ी होती हो, इसी लिये आपको श्रीखण्ड चन्दन की चर्चा
विष की तरह, चन्द्र सूर्य की तरह, हिम अग्नि की तरह, क्रीड़ा
पीड़ा की तरह विपरीत लग रही है ॥ १ ॥

अन्तर्मोहनमौलिघूर्णनचलन्मन्दार विस्रंसनः
स्तब्धाकर्षणदृष्टिहर्षणमहामन्त्रः कुरङ्गीदृशाम् ।
दृष्यहानवदूयमान दिविषदुद्वारदुःखापदां
भ्रंशः कंसरिपोर्व्यपोहयतुवः श्रेयांसि वंशीरवः ॥ २ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे कलहान्तरितावर्णने मुग्धमुकुन्दो ।

नाम नवम सर्गः ॥ ९ ॥

समेतम् ।

दशमः सर्गः

७३

तरुण गोंपियों को मोहित करने में जिनके मुकुट में लगे हुए पारिजातके फूल ढीले पड़ गये हैं, तथा जो अचेतन पदार्थों तक को आकर्षित करते हैं, देखनेवालों को हर्षान्वित करते हैं, जो महामन्त्र स्वरूप हैं, उद्दण्ड दैत्योंसे पीड़ित देवताओं के दुःखों को जो शमन करते हैं, उन भगवान् कृष्णके वंशीकी ध्वनि आप लोगों का कल्याण करे ॥ २ ॥

इस प्रकारसे गीतगोविन्द काव्यके सुग्धसुकुन्द नामक नवम सर्गकी हिन्दी टीका समाप्त हुई ।

दशमः सर्गः



अत्रान्तरे मसृणरोषवशामसीम-

निःश्वास निःसहमुखीं समुपेत्य राधाम् ।

सत्रीडमीक्षितसखीवदनां दिनान्ते

सानन्दगद्गदमिदं हरिरित्युवाच ॥ १ ॥

इसी समय सायङ्काल के समय अत्यन्त कुपित श्वासोच्छ्वास से म्लान मुखवाली, लज्जापूर्वक सखी के मुखको देखने-वाली सुन्दरमुखी राधाके समीप आकर कृष्णने आनन्द से गद्गद होकर कहा ॥ १ ॥

देशवराडिरागे अडवताले अष्टपदी ॥ १६ ॥

वदसि यदि किञ्चिदपि दन्तरुचिकौमुदी

हरति दरतिमिरमतिघोरम् ।

स्फुरदधरसीधवे तव वदनचन्द्रमा

रोचयति लोचन चकोरम् ॥

प्रिये चारुशीले प्रिये चारुशीले

मुञ्च मयि मानमनिदानम् ।

सपदि मदनानलो दहति मम मानसं

देहि मुखकमलमधुपानम् ॥ ध्रु० ॥ १॥

हे प्रिये ! आप यदि कुछ भी कहती हो तो आपकी दन्त-
कान्ति मेरे भयरूपी घने अन्धकारको शमन कर देती है और
आपका मुखरूपी चन्द्रमा आपके फड़कते हुए अधरों की सुधा
पीनेके लिये मेरे नयनरूपी चकोरों को ललचाता है । हे प्रिये !
चारुशीले ! मेरे ऊपर कृपा करके अकारण मानका परित्याग
कीजिये और अपने मुखरूपी कमलका मधुपान कराइये क्योंकि
कामाग्नि मेरे चित्तको जला रहा है ॥ १ ॥

सत्यमेवासि यदि सुदति ! मयि कोपिनी

देहि खरनखरशरघातम् ॥

घटय भुजबन्धनं जनय रदखण्डनं

येन वा भवति सुखजातम् । प्रिये चारु० ॥ २॥

हेसुन्दरदाँतों वाली ! यदि यथार्थमें आप मेरे ऊपर कुपित
हों तो आप अपने नोकीले नाखूनरूपी बाणों से मेरे ऊपर प्रहार
करें, दोनों भुजाओं से मुझे बाँध लें और दाँतों से काट लें ॥ २ ॥

समेतम्]

दशमः सर्गः

७५

त्वमसि मम भूषणं त्वमसि मम जीवनं
त्वमसि मम भवजलाधिरत्नम् ।

भवतु भवतीह मयि सततमनुरोधिनी

तत्र मम हृदयमतिरत्नम् ॥ प्रिये चा० ॥ ३ ॥

हे प्रिये ! आप मेरे लिये अलङ्कार हैं, आप मेरे प्राण हैं, आप मेरे लिये संसारमें रत्नके सदृश हैं, इसलिये सदा मेरे ऊपर आप कृपा करती रहें, आप मेरे ऊपर कृपालु हों इसके लिये मेरा हृदय सदा प्रयत्न करता रहता है ॥ ३ ॥

नीलनलिनाभमपि तन्वि ! तव लोचनं
धारयति कोकनदरूपम् ।

कुसुमशरबाणभावेन यदि रञ्जयसि

कृष्णमिदमेतदनुरूपम् । प्रिये चारु० ॥ ४ ॥

हे तन्वि ! आपके नेत्र नील कमलके सदृश होने पर भी कोपके कारण लाल कमलके सदृश हो रहे हैं, यदि अपने नेत्रोंको कामदेवके बाण समझकर मुझ कृष्णको रँग रही हो तो यह तुम्हारा रङ्गना ठीक ही है ॥ ४ ॥

स्फुरतु कुचकुम्भयोरुपरिमणि मञ्जरी

रञ्जयतु तव हृदयेशम् ।

रसतु रशनापि तव धनजघनमण्डले

घोषयतु मन्मथनिदेशम् । प्रिये चारु० ॥ ५ ॥

हे सुन्दरि ! आपके कलशरूपी स्तनों पर रत्नों का हार शोभायमान हो और वह आपके वक्षस्थलको अनुरक्त करे । हे प्रिये ! आपके सघन जघनमण्डलके ऊपर करधनीकी ध्वनि गूँजे और वह करधनीकीध्वनिकामदेवके आज्ञाकी घोषणाकरे ॥ ५ ॥

स्थलकमलगञ्जनं हृदयरञ्जनं

जनितरतिरङ्गपरभागम् ।

भण मसृणवाणि करवाणिचरणद्वयं

सरसलसदलक्तकरागम् ॥ प्रिये चारु० ॥ ६ ॥

हे मधुरभाषिणि ! यदि आप कहें तो, स्थल कमलकी भी शोभा को मात करनेवाले, मेरे चित्तको आनन्दित करनेवाले, रतिरागमें असीम आनन्द देनेवाले, आपके इन दोनों पैरोंको सरस और शोभायमान महावर से लाल कर दूँ ॥ ६ ॥

स्मरगरलखण्डनं मम शिरसि मण्डनं

देहि पदपल्लवमुदारम् ।

ज्वलति मयि दारुणो मदनकदनानलो

हरतु तदुपाहितविकारम् ॥

हे प्राणप्रिये ! कामदेवरूपी विषका नाश करनेवाले, अलंकार स्वरूप नविन पत्तों के समान कोमल अपने चरणों को मेरे शिरपर रखें क्यों कि कामाग्नि की भयंकर ज्वाला मेरे हृदय में धधक रही है, इसमें जरा शान्ति मिलेगी ॥ ७ ॥

इति चटुलचाटुपटुचारुमुखैरिणो

राधिकामधिवचनजातम् ।

समेतम्]

दशमः सर्गः

७७

जयति पद्मावतीरमणजयदेवकवि-

भारतीभणितमिति गीतम् ॥ ८ ॥

इस प्रकार चञ्चल चतुरता और प्रेमरस से परिपूर्ण अतएव सुन्दर पद्माके पति जयदेव कविकी वाणी द्वारा राधाके प्रति आनन्द कन्द श्रीकृष्णकी उक्तियाँ सबसे बढ़ चढ़कर हैं ॥ ८ ॥

परिहर कृतातङ्गे शङ्कां त्वया सततं धन—

स्तनजघनयाक्रान्ते स्वान्ते परानवकाशिनि ।

विशति वितनोरन्यो धन्यो न कोऽपि ममान्तरं

स्तनभरपरीरम्भारम्भे विधेहि विधेयताम् ॥ १ ॥

हे कामसन्तप्तहृदये ! मैं दूसरी नायिकाके पास जाता हूँ इस तरहकी शंकाओं को छोड़ दें, क्योंकि कठोर स्तनों और सघन-जघनों वाली आपके मेरे हृदयमें व्याप्त हो जानेपर दूसरी नायिका के रहनेके लिये मेरे हृदय में स्थान ही नहीं रहता वह एक काम-देवही धन्य है जो मेरे हृदय में प्रवेश करताहै, इसलिये हे प्रिये !

सुदृढ़ आलिङ्गन का पात्र मुझे बनाइये ॥ १ ॥

मुग्धे ! विधेहि मयि निर्दयदन्तदंशं

दोर्वल्लिवन्धनिविडस्तनपोडनानि ।

चण्डि ! त्वमेव मुदमञ्चय पञ्चबाण—

चाण्डाल काण्डदलनादसवः प्रयान्ति ॥ २ ॥

हे सुन्दरि ! आप मुझे निर्दयता पूर्वक दाँतों से काटिये, अपनी भुजारूप लताओं से मुझे बाँधिये और अत्यन्त कठोर

अपने स्तनों से दवा दीजिये, मेरे जैसे अपराधी के लिये यही दंड है । हे चंडि ! आप ही मुझे प्रसन्न करें क्योंकि चाण्डाल कामदेवके वाणों से मेरे प्राण जा रहे हैं ॥ २ ॥

शशिमुखि ! तव भाति भङ्गुरभू-
युवजनमोहकरालकालसर्पी ।

तदुदितभयभञ्जनाय यूनां

त्वदधरसीधुसुधैव सिद्धमन्त्रः ॥ ३ ॥

हे चन्द्रमुखि ! आपकी तिरछी भौहें तरुण पुरुषों को मोहनेमें अति भयङ्कर काले सर्पकी तरह हैं इन भौहोंसे उत्पन्न मूर्च्छा वाले युवकों के भयके नाशके लिये आपकी अधररूपी सुधा ही सिद्धमंत्र अर्थात् रामवाण (औषधि) है ॥ ३ ॥

व्यथयति वृथा मौनं तन्वि ! प्रपञ्चय पञ्चमं
तरुणि ! मधुरालापैस्तापं विनोदय दृष्टिभिः ।

सुमुखि ! विमुखीभावं तावद्विमुञ्च न बञ्चय
स्वयमतिशयस्निग्धो मुग्धे ! प्रियोऽहमुपस्थितः ॥ ४ ॥

हे कृशांगि ! आपका मौनभाव मुझे वृथा कष्ट दे रहा है, हे तरुणि ! मीठी-मीठी बातों से पंचम स्वरमें मुझसे बातें कर मेरे हार्दिक संताप को दूर करिये, हे चारुवक्त्रे ! मेरी ओर जरा प्रेमसे एक नजर देखिये, अब मुझे मत ठगिये, हे मुग्धे ! मैं आपका अनन्य प्रेमी स्वयं आ गया हूँ ॥ ४ ॥

बन्धूकद्युतिवान्धवोऽयमधरः स्निग्धो मधूकच्छवि-
र्गण्डश्चण्डि ! चकास्तिनीलनलिनश्रीमोचनलोचनम्
नासाभ्येति तिलप्रसूनपदवीं कुन्दाभदन्ति प्रिये !

प्रायस्त्वन्मुखसेवया विजयते विश्वं स पुण्यायुधः ॥५॥

हे चण्डि ! दुपहरियाके फूलके समान लाल-लाल यह आपका
अधर, महुएके फूलके समान सुन्दर ये आपके चिकने गाल, नील
कमलों की कान्तिको चुरानेवाली आपकी ये आँखें, तिलके फूलके
समान आपकी यह नासिका विलक्षण शोभा दे रही है ।
हे कुन्द के सदृश दाँतों वाली ! इस तरह कामदेव आपके ही मुखके
आश्रय से विश्वविजय करता है । १ बन्धूक, २ मधूक, ३ नीलोत्पल
४ तिलपुष्प और ५ कुन्दरूप पाँचो पुष्प-वाण आपही केमुखपर
विराजमान हैं ॥ ५ ॥

दृशौ तव मदालसे वदनमिन्दुमर्यान्वितं

गतिर्जनमनोरमा विधुतरम्भमूरुद्वयम्

रतिस्तव कलावती रुचिरचित्रलेखे भ्रवा-

वहो विबुधयौवनं वहसि तन्वि ! पृथ्वीगता ॥६॥

हे सुन्दरि ! आपकी आँखें मदसे भरी हुई हैं, आपको मुख
चन्द्रमाके समान है आपका गमन देखने वालों के मनका हरण
करने वाला है, आपकी जाँघें केलेके खम्भोंको भी जीत चुकी हैं,
आपकी रतिक्रीड़ा कलापूर्ण है, आपकी भौहें सुन्दर और विचित्र
रेखाकी तरह हैं, हे तन्वि ! आश्चर्य है कि, पृथिवीपर रहने पर
भी आपमें सुराङ्गनाओं के गुण विद्यमान हैं ॥ ६ ॥

प्रीतिं वस्तनुतां हरिः कुवल्यापीडेन सार्धं राणे
 राधापीनपयोधरस्मरणकृतकुम्भेन सम्भेदवान् ।
 पत्रे बिभ्यति मीलति क्षणमपि क्षिप्रं तदालोकनाद्
 व्यामोहेन जितं जितं जितमिति व्यालोलकोलाहलः
 इति श्रीगीतगोविन्दे मानिनीवर्णने चतुरचतुर्भुजो नाम

दशमः सर्गः ॥ १० ॥

कंसके हाथी कुवल्यापीड़के साथ युद्ध करते समय उसके
 कुम्भको भेदन करने वाले, राधाके उन्नत स्तनोंका स्मरण करने-
 वाले, भयदायी हाथोंकी मृत्यु देखकर कंसको “जीतलिया जीत-
 लिया” ऐसे कोलाहलों को मचानेवाले, अद्भुत कार्य करनेवाले,
 श्रीकृष्ण भक्तों की प्रीतिको बढ़ावें ॥ ७ ॥

इस प्रकारसे गीतगोविन्द काव्यके चतुर्भुजनामक दशम
 सर्ग की हिन्दी टीका समाप्त हुई ।

एकादशः सर्गः

सुचिरमनुनयेन प्रीणयित्वा मृगाक्षीं
 गतवति कृतवेषे केशवे कुञ्जशय्याम् ।
 रचितरुचिरभूषां दृष्टिमोषे प्रदोषे
 स्फुरति निरवसादां कापि राधां जगाद् ॥ १ ॥

बहुत देर तक अनुनय विनय करके राधाको प्रसन्न करलेने
 पर, सन्ध्या के समय श्रीकृष्णके कुञ्जमें शयन करने के लिये चले

समेतम्] ६

एकादशः सर्गः

८१

जानेपर और दृष्टि को चुरानेवाले प्रदोष समयके आजाने पर
एक सखीने अच्छे शृङ्गारसे सजी अतिप्रमुदित हृदयवाली राधासे
कहा ॥ १ ॥

वसन्तरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ २० ॥

विरचितचाटुवचनरचनेन चरणरचितप्रणिपातम् ।
सम्प्रति मञ्जुलवञ्जुलसीमनि केलिशायनमनुयातम् ।
मुग्धे मधुमथनमनुगतमनुसर राधिके ॥ ध्रु० १ ॥

हे मुग्धे ! मधुर वचनों को कह कर आपके पैरों पड़नेवाले
इस समय आपके अनुकूल मनोहर श्रीकृष्ण बैतके लतागृहमें
क्रीडाशयन पर पधारे हैं, इसलिये हे राधे ! उन मधुरिपु
श्रीकृष्णके समीप शीघ्र चलिये ॥ १ ॥

घनजघनस्तनभारभरे दरमन्थरचरण विहारम् ।
मुखरितमणिमञ्जीरमुपेहि विधेहि मरालविकारम् ।
॥ मुग्धे० ॥ २ ॥

हे सघन जाँघो वाली तथा उभड़े हुए और कड़े-कड़े स्तनों वाली
प्यारी ! धीरे-धीरे अपने शिथिल पैरों को पृथ्वी पर रखती
हुई तथा मणि नूपुरों को बजाती हुई हंसकी चालसे श्रीकृष्णके
समीप चलिये ॥ २ ॥

शृणु रमणीयतरं तरुणीजनमोहनमधुरिपुरावम् ।
कुसुमशरासनशासनवन्दिनी पिकनिकरे भज भावम्
॥ मुग्धे० ॥ ३ ॥

हे प्रिये ! युवतियों को मोहित करनेवाले श्रीकृष्णकी
वाँसुरीकी ध्वनि सुनिये तथा कामदेवकी आज्ञाके प्रचारके लिये
बन्दीका काम करनेवाली कोकिलाओंके भावको भजिये ॥ ३ ॥

अनिलतरलकुवलयनिकरेण करेण लतानिकुरम्बम् ।
प्रेरणमिव करभोरु ! करोति गतिं प्रतिमुञ्च विलम्बम्
॥ मुग्धे० ॥४॥

हे करभोरु ! देखिये इन लतओंका झुण्ड पवन द्वारा प्रेरित
होकर चञ्चल पल्लवरूपी हाथोंसे आपके गमनकी प्रेरण कर रहा
है, इसलिये हे प्रिये ! विलम्ब न करें जल्द चलिये ॥ ४ ॥

स्फुरितमनङ्गतर्ङ्गवशादिव सूचितहरिपरिरम्भम् ।
पृच्छ मनोहरहारविमलजलधारममुं कुवकुम्भम् ॥
॥ मुग्धे० ॥५॥

हे सखी ! यदि मेरे इस बात का विश्वास नहीं है तो काम-
देवके तरंगके वशीभूत होकर चलायमान और श्रीकृष्णके आलिं-
गनको पहलेहीसे सूचित करनेवाले एवं मनोहर हाररूपी जलधारा
वाले कुम्भके समान अपने इन दोनों कुचों से पूछ लीजिये कि
ये क्यों फड़क रहे हैं ॥ ५ ॥

अधिगतमखिलसखोभिरिदं तव वपुरपिरतिरणसज्जम्
चण्डि ! रणितरशनारवडिण्डिममभिसरसरसमलज्जम्
मुग्धे० ॥६॥

समेतम्]

एकादशः सर्गः

८३

हे मानिनि ! सभी सखियोंको यह बात अच्छी तरह मालूम हो चुकी है कि, आपका शरीर रतिरूपी संग्रामके लिये प्रस्तुत है, ऐसी अवस्थामें हे चन्डि ! लज्जाको त्यागकर प्रेमसे करधनी के शब्दको करती हुई आप संकेत स्थलकी ओर चलें ॥ ६ ॥
 स्मरशरसुभगनखेन सखीमवलम्ब्य करेण सलीलम् ।
 चलवलयक्वणतैरवबोधय हरिमपि निजगतिशीलम्
 मुग्धे० ॥७॥

हे सुभगे ! कामदेवके बाणके समान सुन्दर नख वाले हाथ से लीलापूर्वक बड़े हाव-भावके साथ सखीका हाथ पकड़कर चलिये और कामदेवके वशीभूत पायल घुघरुओं को बजाकर अपने आने की सूचना दीजिये ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमधरोक्तहारमुदासितवामम् ।
 हरिविनिहितमनसामधितिष्ठतुकण्ठतटीमविरामम् ॥
 मुग्धे० ॥८॥

जयदेव कवि द्वारा कहा गया यह गीत रत्नोंके हार को भी तिरस्कृत करने वाला, युवतियों को उदासीन बनानेवाला भगवद्भक्तोंके कंठमें सदा निवास करे ॥ ८ ॥

सा मांद्रक्ष्यति वक्ष्यति स्मरकथांप्रत्यङ्गमालिङ्गनैः
 प्रीतियास्यति रंस्यते सखि समागत्येति चिन्ताकुलः
 स त्वां पश्यति वेपते पुलकयत्यानन्दति स्वियति
 प्रत्युद्गच्छतिमूर्च्छतिस्थिरतमःकुञ्जे निकुञ्जे प्रियः१॥

हे राधिके ! अत्यन्त अन्धकारमय लताकुञ्ज में विराजमान आपके प्रिय श्रीकृष्ण चिन्ताकुल होकर सोचते हैं—कि, राधा मुझे देखेंगी, मेरे साथ मीठी-मीठी प्रेमपूर्ण बातें करेंगी, हर एक अंगका आलिङ्गन कर प्रसन्न हो जायेंगी, तदनन्तर मेरे साथ रतिक्रीड़ा करेंगी, इस तरह अनेक प्रकारके मनोरथों को मनमें उत्पन्न करते हुए वे श्रीकृष्ण ध्यानमें आपको देखते हैं, देखकर काँप जाते हैं, पुलकित गात हो जाते हैं, । स्वापिक समागमसुख का अनुभव करने लगते हैं, रतिक्रमसे पसीने-पसीने हो जाते हैं, तुम्हारी भावना सँ उठकर खड़े हो जाने पर तुमको सामने न पाकर मूर्छित हो जाते हैं ॥ १ ॥

अक्षोर्निक्षिप कज्जलं श्रवणयोस्तापिच्छगुच्छावलीं
मूर्ध्नि श्यामसरोजदामकुचयोः कस्तूरिकापत्रकम् ।
धूर्तानामभिसारसत्वरहदां विष्वङ् निकुञ्जे सखि ।
ध्वान्तनीलनिचोलचारुसुदृशांप्रत्यङ्गमालिङ्गति २

हे सखी राधे ! आँखोंमें काजल, कानोंमें मोरपंखके गुच्छे, शिरमें नील कमलों की माला और कुचोंपर कस्तूरीके रससे पत्र-रचना आदि द्वारा अपने को सजाकर श्रीकृष्णके पास चलें । प्रायः अभिसारके लिये अत्यन्त आतुर धूर्तनायिकाओं के लिये संकेत स्थानमें जानेके लिये उपर्युक्त आभूषण ही हैं, क्योंकि काले वस्त्रसे सुन्दर नायिकाओं को निकुञ्ज का फैला हुआ गाढ़ान्धकार उनके सर्वाङ्गों का आलिङ्गन करता है ॥ २ ॥

समेतम्]

पकः दशः सर्गः

८५

काशमीरगौरवपुषामभिसारिकाणा-

मावद्धरेखमभितो मणिमञ्जरीभिः ।

एतत्तमालदलनीलतमं तमिस्रं

तत्प्रेमहेमनिकषोपलतां तनोति ॥ ३ ॥

हे प्रिये ! केसर की कान्तिके समान शरीरवाली अभिसारिकाओं के लिये मणिमञ्जरियों से चारों ओर रेखा किया हुआ, तमालपत्रों के समान अत्यन्त नील, यह अन्धकार, प्रेमरूपी सुवर्ण की कसौटी है । जैसे सुनार सुवर्ण की परीक्षा कसौटी पर करता है, उसी तरह प्रेमी-प्रेमिकाओं की परीक्षा अन्धेरे में करते हैं ॥ ४ ॥

हारावलीतरलकाञ्चनकाञ्चिदाम्-

केयूरकङ्कणमणिद्युतिदीपितस्य ।

द्वारे निकुञ्जनिलयस्य हरिं निरीक्ष्य

ब्रीडावतीमथ सखी निजगाढराधाम् ॥ ४ ॥

उसके अनन्तर मालाओं, चमकदार सुवर्ण की करधनी, वाजूबंद और कङ्कण आदिमें लगे हुए मणियों की कान्ति से जगमगाते हुए लतागृहके द्वारपर श्रीकृष्णको देखकर लजावती राधासे एक सखी बोली ॥ ५ ॥

वराटिरागे अडवाताले अष्टपदि ॥ २ ॥

मञ्जुतरकुञ्जतलकेलिसदने

विलस रतिरभसहसितवदने

प्रविश राधे ! माधवसमीपमिह ॥ ध्रुव० ॥ १ ॥

रति क्रीडाके उत्साहसे प्रसन्नमुखवाली हे राधिके ! अतिसुन्दर
लताकुञ्ज रूप क्रीडागृहमें जाइये और माधव के समीप जाकर
उनके साथ रमण करिये ॥ १ ॥

नवभवदशोकदलशयनसारे

विलस कुचकलशतरलहारे ॥ प्रविश० ॥ २ ॥

कलशके समान स्तनोंपर चञ्चल मुक्तहार धारण करनेवाली
हे राधे ! नवीन अशोकके पत्तोंसे रचित शय्यापर श्रीकृष्णके साथ
रमण करिये ॥ ३ ॥

कुसुमचयरचितशुचिवासगेहे ।

विलस कुसुमसुकुमार देहे ॥ प्रविश० ॥ ३ ॥

फूलोंके समान सुकुमार शरीरवाली हे राधे ! फूलोंके समूह
से निर्मित अतएव पवित्र इस शयनगृहमें जाइये और श्रीकृष्णके
साथ आमोद-प्रमोद कीजिये ॥ ३ ॥

चलमलयपवनसुरभिशीते ।

विलस रसवलितललितगीते ॥ प्रविश० ॥ ४ ॥

हे शृङ्गार रससे ओतप्रोत गीतगाने वाली राधे ! मलय-
पर्वत की वायुसे सुगन्धित और शीतल इस प्रेममन्दिरमें जाकर
श्रीकृष्णके साथ विहार करिये ॥ ४ ॥

विततबहुवस्त्रिनवपल्लवधने ।

विलस चिरमिलितपीनजघने ॥ प्रविश० ॥ ५ ॥

हे चिर कालसे मिली हुई और मोटी २ जाँघोंवाली राधे !

समेतम्]

एकादशः सगः

८७

फौली हुई नानाभाँतिकी लताओंके कोमल पत्तोंसे घने कुञ्जमें
जाकर अपने प्यारे कृष्णकी प्रेमिका बनिये ॥ ५ ॥

मधुमुदितमधुपकुलकलितरावे ।

विलस दशनरभसरसभावे ॥ प्रविश० ॥ ६ ॥

हे कामदेवके उद्वेगसे उत्पन्न शृङ्गार रसमें अनुराग रखने वाली
राधे ! पुष्प रसके आस्वादसे आनन्दपूर्वक भंकार करनेवाले
भौरोंके झुण्डोंवाले लताभवन में जाकर प्रेम रस चखिये ॥ ६ ॥

मधुरतरपिकनिकरनिनदमुखरे ।

विलस दशनरुचिरशिखरे ॥ प्रविश० ॥ ७ ॥

हे दाँतोंकी चमक-दमकसे शोभायमान शिखर मणिवाली
राधे ! अत्यन्त मधुर कोकिलाओंकी वाणी से शब्दायमान
लतागृहमें प्रवेशकर श्रीकृष्ण के साथ विहार करिये ॥ ७ ॥

विहितपद्मावतीसुखसमाजे ।

कुरु मुरारे ! मङ्गलशतानि ॥

भणितजयदेवकविराजराजे ॥ प्रविश० ॥ ८ ॥

हे श्रीकृष्णचन्द्र ! पद्मावतीके सुखसमूह का निर्माण करने
वाले कविराजों में भी श्रेष्ठ जयदेव कविके सैकड़ों प्रकार के
मंगल का विधान करें ॥ ८ ॥

त्वां चित्तेन चिरं वहन्नयमतिश्रान्तो भृशं तापितः ।

कन्दर्पेण च पातुमिच्छति सुधासम्बाधविम्बाधरम् ॥

अस्याङ्कं तदलङ्कुरु क्षणमिहभ्र क्षेपलक्ष्म्यास्तव
क्रीते दास इवोपसेवितपदाम्भोजे कुतः सम्भ्रमः ॥ १ ॥

हे राधिके ! आपको चिरकाल तक चित्तमें धारण करनेसे अधिक थके हुए, कामदेव से अत्यन्त सताये हुए श्रीकृष्ण आपके सुधारस से परिपूर्ण कुन्दरू फलके सदृश लाल-लाल अधरोंका पान करना चाहते हैं, इसलिये हे प्रिये ! इनकी गोदको छूणमात्रके लिये शोभित कर दीजिये, क्योंकि ये कृष्ण आपकी तिरछी भौहों के इशारे पर खरीदे हुए दासके समान आपके चरण कमलों की सेवा करने वाले हैं, इसलिये इन श्रीकृष्णके समीप जानेमें हिचकिचाहट कैसी ? ॥ १ ॥

सा ससाध्वससानन्दं गोविन्दे लोललोचना ।

सिञ्जाना मञ्जुमञ्जीरं प्रविवेश निवेशनम् ॥ २ ॥

चञ्चल नयनी वह राधा, लज्जा और आनन्द के साथ अपने पायजेवकी मनोहर ध्वनि करती हुई उस लताकुञ्ज में चली गयी ॥ २ ॥

वराडीरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ २ ॥

राधावदनविलोकनविकसितविविधविकारविभङ्गम् ।
जलनिधीमिव विधुमण्डलदर्शनतरलिततुङ्गतरङ्गम्
हरिमेकरसं चिरमभिलषितविलासम् ।

सा ददर्श गुरुहर्षवशंवदवदनमनङ्गनिवासम् ॥ १ ॥

राधाने, चन्द्रमण्डलकी देखकर चञ्चल और ऊँचे तरङ्गवाले

लमेतम्]

पकादशः सर्गः

८९

समुद्रके समान राधाके मुखरूपी चन्द्रके दर्शनसे आनन्दित अनेक प्रकारके शृङ्गाररस के भावों से पूर्ण, समभाव वाले चिर कालसे अपनी राधाके साथ विहार करनेकी इच्छा रखने वाले हर्षसे आह्लादित मुखवाले कामदेवके वासस्थानरूप श्रीकृष्ण को देखा ॥ १ ॥

हारममलतरतारमुरसि दधतं परिभ्य विदूरम् ।

स्फुटतरफेनकदम्बकरम्बितमिव यमुनाजलपूरम् ॥ हरि० ॥

अत्यन्त सफेद फेनके समूहसे मिले हुए यमुनाजलके प्रवाह के समान, जानुपर्यन्त लटकते हुए अति शुभ्र मुक्ताहारको वक्ष स्थल पर धारण किये हुए श्रीकृष्णको राधाने देखा ॥ २ ॥

श्यामलमृदुलकलेवरमण्डलमधिगतगौरदुकूलम् ।

नीलनलिनमिव पीतपरागपटलभरवलयितमूलम् ॥

हरि० ॥ ३ ॥

पीले रंगवाले परागसे व्याप्त नीलकमलके समान कोमल शरीर पर पिताम्बर धारण किये हुए कृष्णको राधाने देखा ॥ ३ ॥

तरलदृगञ्चलचलनमनोहरमदनजनितरतिरागम् ।

स्फुटकमलोदरखेलितखञ्जनयुगमिव शरदि तडागम्

हरि० ॥ ४ ॥

शरद् ऋतुमें खिले हुए कमलके मध्यमें क्रीड़ा करनेवाले दो खञ्जरीट पक्षियों से युक्त तालावके समान चञ्चल नयनोंकी

९०

श्रीगीतगोविन्दम्-

[भाषाटीका-

कोरोंसे मनोहर मुखद्वारा युवतियोंमें रतिकी अभिलाषा उत्पन्न करनेवाले श्रीकृष्ण को राधाने देखा ॥ ४ ॥

वदनकमलपरिशीलनमीलितमिहिरसकुण्डलशोभम्
स्मितरुचिरुचिरसमुल्लसिताधरपल्लवकृततरतिलोभम् ॥
हरि० ॥ ५ ॥

मुखकमलको देखनेके लिये परस्पर मिले हुए सूर्यके समान कुण्डलोंसे विभूषित, मुस्कराहटकी छविसे मनोहर और प्रफुल्लित अधर पल्लवों द्वारा रमणियों को रतिमें लोभ उत्पन्न करनेवाले श्रीकृष्णको राधाने देखा ॥ ५ ॥

शशिकिरणच्छुरितोदरजलधरसुन्दरकुसुमसुकेशम् ।
तिमिरोदितविधुमण्डलनिर्मलमलयजतिलकनिवेशम् ॥
हरि० ॥ ६ ॥

चन्द्रकिरणोंसे मिले हुए मेघके मध्यभागके समान मनोहर पुष्पोंसे सुन्दर केशवाले, अन्धेरेमें उदित चन्द्रमण्डलके समान निर्मल और मलयागिरि चन्दनका तिलक किये हुए श्रीकृष्णको राधाने देखा ॥ ६ ॥

विपुलपुलकभरदन्तुरितं रतिकेलिकलाभिरधीरम् ।
मणिगणकिरणसमूहसमुज्ज्वलभूषणसुभग शरीरम् ॥
हरि० ॥ ७ ॥

अत्यन्तरोमाञ्चित देहवाले, रतिक्रीडाकी कलाओंसे अधीर

समेतम्]

एकादशः सर्गः

९१

मणियोंके किरण समूहसे प्रकाशमान, अलङ्कारोंसे सुन्दर शरीरवाले
श्रीकृष्णको राधाने देखा ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितविभवेन द्विगुणीकृतभूषणभारम् ।
प्रणमत हृदि विनिधाय हरिं सुचिरसुकृतोदयसारम् ॥
हरि० ॥ ८ ॥

हे भक्तों ! श्रीजयदेव कविके वर्णन किये हुए विभवकी अपेक्षा
द्विगुणित अलङ्कारोंसे युक्त और चिरकाल से सञ्चित पुण्योदयके
तत्त्वरूप श्रीकृष्णको चित्तमें धारण कर प्रणाम कीजिये ॥ ८ ॥

अतिक्रम्यापाङ्गं श्रवणपथपर्यन्तगमन--
प्रयासेनैवाक्षणेस्तरलतरतारं पतितयोः ।
इदानीं राधायाः प्रियतमसमालोकसमये
पपात स्वेदाम्बुप्रसर इव हर्षाश्रुनिकरः ॥ १ ॥

अतिप्रिय श्रीकृष्णके दर्शनके समय राधाके नेत्र, अपाङ्गोंका
अतिक्रमण करके कानतक चले गये इसी श्रमसे मानों उनके नेत्रों
से पसीना आनन्दाश्रुके रूपमें जलधाराके समान बहने लगा ॥ १ ॥

भजन्त्यास्तल्पान्तं कृतकपटकण्डूतिपिहित-
स्मिते याते गेहाद्बहिरवहितालीपरिजने ।
प्रियास्यं पश्यन्त्याः स्मरशरवशाकृतसुभगं
सलज्जाया लज्जा व्यगमदिव दूरं मृगदृशः ॥ २ ॥

कान आदिके खुजलानेके बहानेसे अपनी मुस्कराहटको

रोकनेवाले चतुर सखीजनोंके लतागृहसे बाहर चले जानेपर पलंग पर बैठी हुई कामदेवके वाणोंके वशीभूत अतएव सुन्दर अपने प्रिय श्रीकृष्णचन्द्रके मुखको देखनेवाली मृगनयनी राधाकी लज्जा लज्जित होकर दूर चली गयी ॥ २ ॥

जयश्रीविन्यस्तैर्महित इव मन्दारकुसुमैः

स्वयं सेन्दूरेण द्विपरणमुदा मुदित इव ।

भुजापीडक्रीडाहतकुवल्यापीडकरिणः

प्रकीर्णसृग्विन्दुर्जयति भुजदण्डो मुरजितः ॥ ३ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे सानन्दगोविन्दो नामैकादशः सर्गः ॥११॥

प्रचण्ड भुजदण्डकी क्रीडासे कंसके कुवल्यापीड नामक हाथीको मारनेवाले श्रीकृष्णके रक्तके विन्दुओं से व्याप्त भुजदंड को मानो विजयलक्ष्मीने प्रसन्न होकर पारिजातके पुष्पों से स्वयं पूजाकी हो और कुवल्यापीडके संग्राम से हर्षित होकर स्वयं श्रीकृष्ण सिन्दूरसे उसको रञ्जित किये हों ऐसा श्रीकृष्ण का भुजदंड आपका कल्याण करे ॥ ३॥

इस प्रकारसे गीतगोविन्द काव्य के सानन्दगोविन्दनामक एकादशसर्गकी हिन्दी टीका समाप्त हुई ।

द्वादशः सर्गः



गतवति सखिवृन्देऽमन्दत्रपाभारनिर्भर
 स्मरशरवशाकूतस्फीतस्मितस्नपिताधराम् ।
 सरसमनसं दृष्ट्वा राधां मुहुर्नवपल्लव-
 प्रसवशयने निक्षिप्ताक्षीमुवाच हरिः प्रियाम् ॥ १ ॥

सखियों के लताकुञ्जके बाहर चले जानेपर अत्यन्त लज्जाके कारण और कामदेव के वशीभूत होनेसे मुस्कुराहटसे युक्त अधरोष्ठ वाली तथा रतिक्रीडाके लिये सानुराग और नव पल्लव एवं कुसुमों द्वारा रचित शय्याको बार-बार अवलोकन करनेवाली राधाको देखकर श्रीकृष्णने कहा ॥ १ ॥

विभासरामे एकतालीताले अष्टपदी ॥ २३ ॥

किसलयशयनतलेकुरु कामिनिचरणनलिनविनिवेशम्
 तव पदपल्लववैरिपराभवमिदमनुभवतु सुवेषम् ।
 क्षणमधुना नारायणमनुगतमनुसर मां राधिके ।
 ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे कामिनि ! कोमल-कोमल पत्तोंसे बनी सेजके ऊपर अपने चरण कमलों को रखिये, जिससे आपके पदपल्लवके शत्रु ये शय्या के पल्लव क्षणमात्र आपके पदपल्लवों द्वारा प्राप्त

पराभवका अनुभव करें, हे प्रिये ! मुहूर्तमात्रके लिये नारायणके अनुकूल हो जाइये ॥ १ ॥

करकमलेन करोमि चरणमहमागमितासि विदूरम् ।
क्षणमुपकुरु शयनोपरि मामिव नूपुरमनुगतिशूरम्
॥ क्षण० ॥ २ ॥

हे प्रिये ! आप बहुत दूरसे आयी हैं इसलिये मैं अपने हाथोंसे आपके चरणोंको दबाता हूँ । कृपया, मेरे ही तरह इन नूपुरों का भी आदर कीजिये ! इनको शय्यापर उतार दीजिये ॥ २ ॥

वदनसुधानिधिगलितममृतमिव रचय वचनमनुकूलम्
विरहमिवापनयामि पयोधररोधकमुरसि दुकूलम्
॥ क्षण० ॥ ३ ॥

हे राधे ! आप अपने चन्द्रमा के समान मुख से निकले अमृत तुल्य अनुकूल वचन कहिये मैं विरह के हटाये जानेकी तरह आपके कुचों पर के वल्लको हटाता हूँ ॥ ३ ॥

प्रियपरिरम्भणरसवलितमिव पुलकितमन्यदुरापम् ।
मदुरसि कुचकलशं विनिवेशय शोषय मनसिजतापम्
॥ क्षण० ॥ ४ ॥

हे राधे ! प्रियके आलिंगन के लिये सन्नद्ध तथा रोमांचित और अन्यों को दुर्लभ कलशके सदृश इन स्तनों को मेरे वक्षःस्थलपर रखकर मेरी काम पीड़ा हरिये ॥ ४ ॥

समेतम्]

द्वादशः सर्गः

९५

अधरसुधारसमुपनय भामिनि । जीवय मृतमिव दासम्
त्वयिविनिहितमनसं विरहानलदग्धवपुषमविलासम्

॥ क्षण० ॥ ५ ॥

हे भामिनि ! तुम्हारे में आसक्त, विलासरहित विरहरूप
अग्नि से झुलसे शरीरवाले, मरे हुए की तरह इस सेवकको
अपने अधररूपी अमृतका पानकराकर जीवित करो ॥ ५ ॥

शशिमुखिमुखरयमणिरशनागुणमनुगुणकंठनिनादम्
मम श्रुतियुगले पिकरवविकले शमय चिरादवसादम्

॥ क्षण० ॥ ६ ॥

हे चन्द्रानने ! अपने कंठके ध्वनिके समान करधनीके
मणियोंको बजाइये, तथा कोयलके ध्वनिसे व्यथित मेरे कानोंके
दुःखको शान्त करिये ॥ ६ ॥

मामतिविफलरूपा विफलीकृतमवलोकितुमधुनेदम् ।

मीजितलज्जितमिव नयनं तव विरम विसृज रतिखेदम्

॥ क्षण० ॥ ७ ॥

हे सुन्दरि ! सर्वथा व्यर्थ के क्रोध से उत्तेजित मुझे देखने
के लिये आपके ये नेत्र इस समय लज्जायुक्त हो बन्द हो रहे हैं,
इसलिये विश्राम कीजिये, रति खेदको छोड़ दीजिये ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमिदमनुपदनिगदितमधुरिपुमोदम् ।

जनयतु रसिकजनेषु मनोरमरतिरसभावविनोदम्

॥ क्षण० ॥ ८ ॥

पद-पद में श्रीकृष्णके आनन्दका वर्णन करनेवाले जयदेव कवि द्वारा रचित यह गीत रसिक जनोमें सुन्दर शृंगार रसके आनन्दको उत्पन्न करे ॥ ८ ॥

प्रत्यूहः पुलकाङ्गरेण निविडाश्लेषे निमेषेण च
क्रीडाकृतविलोकितेऽधरसुधापाने कथाकेलिभिः ।
आनन्दाधिगमेन मन्मथकलायुद्धोऽपि यस्मिन्नभू-
दुद्भूतः स तयोर्वभूव सुरतारम्भः प्रियं भावुकः ॥ १ ॥

उन श्रीकृष्ण तथा उनकी परम प्यारी राधाकी रतिक्रीड़ा जब आरम्भ हुई, उस समय प्रगाढ़ आलिंगन करते हुए रोमाञ्चका होना विघ्न मालूम होता था, क्रीड़ाके अभिप्रायसे देखनेके समय पलक गिरनाभी विघ्नभूत लगता था, अधरामृत पान करते हुए केलिकथा भी कष्ट—दायिका प्रतीत होती थी, काम कलापूर्ण समर में उत्पन्न आनन्द भी उस समय सुरतरूपी समरमें विघ्नसा ही लगता था ॥ १ ॥

दोर्भ्यां संयमितः पयोधरभरेणापीडितः पाणिजै-
राविद्धो दशनैः क्षताधरपुटः श्रोणीतटेनाहतः ।
हस्तेनानमितः कचेऽधरमधुस्यन्देन सम्मोहितः
कान्तःकामपि तृप्तिमाप तदहो कामस्य वामा गतिः २

राधिकाके हाथों से बँधे, स्तनोंके भारसे दबे, नखों से क्षत किये गये, दन्तक्षत किये अधरवाले, कटिसे ताड़ित, केशों को हाथों से पकड़कर नमाये गये, अधरोंके मधुपानसे मोहित श्रीकृष्ण लोको-

समेतम्] ७

द्वादशः सगः

९७

तर आनन्दको प्राप्त हुए । इसी कारण से कामदेवकी गतिको कुटिल कहा गया है ॥ २ ॥

माराङ्के रतिकेलिसङ्कुलरणारम्भे तथा साहस-
प्रायं कान्तजयाय किञ्चिदुपरि प्रारम्भि यत्सम्भ्रमात् ।
निष्पन्दा जघनस्थलो शिथिलिता दोर्वल्लिरुत्कम्पितं
वक्षोमीलितमक्षिपौरुषरसः स्त्रीणां कुतः सिद्ध्यति ॥ ३

सुरत क्रीडारूपी संग्रामके आरम्भ हो जानेपर राधिकाने साहससे पतिपर विजय प्राप्त करनेके लिये कुछ समयतक कृष्णके वक्षस्थलपर सम्भ्रम पूर्वक विपरीत रति प्रारम्भ की, उस समय उनकी जाँघें स्तब्ध हो गयीं, बाहें शिथिल हो गयीं, छाती धड़कने लगी परमानन्दके समय आँखें ढँपने लगीं, ठीक ही है, स्त्रियों में पौरुष कहाँ से आ सकता है ॥ ३ ॥

तस्याः पाटलपाणिजाङ्कितमुरो निद्राकषाये दृशौ
निर्धूताऽधरशोणिमा विलुलितस्रस्तस्रजो मूर्द्धजाः ।
काञ्चीदामदरश्लथां चलमिति प्रातर्निखातैर्दृशो-
रेभिः कामशरैस्तदद्भुतमहोपत्युर्मनः कीलितम् ॥ ४ ॥

नखक्षत चिन्हित राधाके वक्षस्थल, रात्रिके जागरण से लाल-लाल उनकी आँखें, चुम्बनसे नटलालिमा वाले अधरोष्ठ,

विखरे और शिथिल बन्धन वाली मालायुक्त केश, कमरका कर-
घनीके समीपके खुले हुए वस्त्र आदि प्रातः काल देखकर श्रीकृष्ण
का चित्त कामदेव के वाणों से विद्ध होने लगा ॥ ४ ॥

त्वामप्राप्य मयि स्वयम्बरपरां क्षीरोदतीरोदरे
शङ्के सुन्दरि ! कालकूटमपिबन्मू ढो मृडानीपतिः ।
इत्थंपूर्वकथाभिरन्यमनसो विक्षिप्य वामाञ्चलं
राधायाःस्तनकोरकोपरिचलन्नेत्रे हरिःपातुवः ॥ ५ ॥

हे क्षीरसागरके तीरपर स्वयंवरके लिये आई हुई सुन्दरि !
आपको न पा करके ही मृडानिपति शंकर ने विष पी लिया था
ऐसा मेरा अनुमान है । इस प्रकारकी अपनी पूर्व कथाकी स्मृतिसे
अन्यमनस्क राधिकाके कुचों परका वस्त्र हटाकर प्रसन्न होनेवाले
श्रीकृष्ण आपका रक्षा करें ॥ ५ ॥

व्यालोलःकेशपाशस्तरलितमलकैः स्वेदलोलौ कपोलौ
स्पष्टा दष्टाधरश्रीःकुचकलशरुचा हारिता हारयष्टिः ।
काञ्चीकाञ्चीद्गताशांस्तनजघनपदंपाणिनाञ्छाद्यसद्यः
पश्यन्तीचात्मरूपंतदपिविलुलितं स्रग्धरेयंधुनोति ॥ ६ ॥

जिनका केशपाश विखर गया है, अलकें चञ्चल हो गयी
हैं, दोनों गाल पसीनेकी बूंदोंसे गीले हो गये हैं, ओष्ठोंके ऊपर
दन्तक्षत स्पष्ट विदित हो रहे हैं, कलश के समान स्तनोंकी

लमेतम्]

द्वादशः सर्गः

९९

शोभासे मुक्ताहार पराजित होगये हैं, करधनी सिकुड़ी हुई एक ओर पड़ा है । प्रातः काल अपनी ऐसी अवस्थापर राधाने अपने हाथों से कुचों और जघनको ढाँक अपने रूप को देखती और साधारण फूलों की मालाको धारण करती हुई भी वह श्रीकृष्णको आनन्दकारिणी मालूम पड़ी ॥ ६ ॥

ईषन्मीलितदृष्टिमुग्धहसितं सीत्कारधारावशा-

दव्यक्ताकुलकैलिकाकुविकसदन्तांशुधौताधरम् ।

श्वासोत्कम्पिपयोधरोपरि परिष्वङ्गात्कुरङ्गीदृशो

हर्षोत्कर्षविमुक्तनिःसहतनोर्धन्यो धयत्याननम् ॥७॥

कामकैलिकी उत्क्रांठासे उत्पन्न शिथिल स्वासोच्छ्वासके कारण कुछ हिलते हुए कुचोंके आलिंगन से, हर्षके अतिरेकसे कुछ वन्द नेत्रवाले और सुन्दर हास्यसे युक्त तथा लगातार सीत्कारोंके वश अव्यक्त एवं व्याकुलतासे उत्पन्न शब्दों से विकसित दाँतों की कान्तिसे प्रक्षलित अधरवाले मुखका पान (चुम्बन) विरले ! भाग्यवान् काते हैं । ७ ॥

अथ सा निर्गतबाधा राधा स्वाधीनभर्तृका ।

निजगाद रतिकलान्तं कान्तं मण्डनवाञ्छया ॥८॥

इति सहसा सुप्रीतं सुरतान्ते सा नितान्तखिन्नाङ्गी

राधा जगाद सादरमिदमानन्देन गोविन्दम् ॥९॥

इसके बाद शान्त काम बाधा वाली, रतिके अन्तमें नितान्त
खिन्न अङ्गोंवाली, स्वाधीन भर्तृका वह राधा अपने शृङ्गार करने
के लिये रति श्रम शान्त प्रिय कृष्णसे बोली । सम्मानिनि रति-
श्रमसे थकी वह राधा आनन्द और आदर पूर्वक अपने प्रिय
श्रीकृष्णसे बोली ॥ ८-६ ॥

रामकरीरामे रूपकताले अष्टपदी ॥ २४ ॥

कुरु यदुनन्दन चन्दनशिशिरतरेण करेण पयोधरे ।
मृगमदपत्रकमत्र मनोभवमङ्गलकलशसहोदरे ॥
निजगाद् सा यदुनन्दने क्रीडति हृदयानन्दने

॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हृदयको प्रफुल्लित करनेवाले श्रीकृष्णके रतिक्रीडा करते
हुए राधाने कहा-“हे श्रीकृष्णचन्द्र ! चन्दनके समान अति शीतल
अपने हाथों से कामदेवके मंगल कलश की तरह मेरे स्तनोंपर
कस्तूरीसे पत्र रचना कीजिये ॥ १ ॥

अलिकुलगञ्जनसञ्जनकं रतिनायकसायकमोचने ।
त्वदधरचुम्बनलम्बितकज्जलमुज्ज्वलय प्रिय लोचने
निज० ॥ २ ॥

हे प्रिय पीताम्बरधारिन् ! कामदेवके बाणों को छोड़नेवाले

समेतम्]

द्वादशः सर्गः

१०६

मेरे नेत्रोंमें भ्रमरोंके समूहके समान आपके अधरोंके चुम्बनसे
मिटे हुए मेरी आँखों के कज्जलको उज्ज्वल करिये ॥ २ ॥

नयनकुरङ्गतरङ्गविलास निरोधकरे श्रुतिमण्डले ।
मनसिजपाशविलासधरे शुभवंशे निवेशय कुण्डले
॥ निज० ॥ ३ ॥

हे प्रियतम ! नेत्ररूपी हरिणीके विलासको रोकनेवाले मेरे
कानों में कामदेवके पाश के समान कुण्डल पहनाइये ॥ ३ ॥
भ्रमरवयं रचयन्तमुपरि रुचिरं सुचिरं मम सम्मुखे
जितकमले विमले परिकर्मय नर्मजने कमलकं मुखे
॥ निज० ॥ ४ ॥

हे मनोहरवेषधारिन् श्रीकृष्ण ! जिसके ऊपर भ्रमर उड़
रहे हैं ऐसे मनोहर तथा स्वच्छ कमलोंको जीतनेवाले, आनन्दको
देनेवाले, मेरे मुखपर गिरनेवाली सुन्दर अलकावलीको आप
गूँथिये ॥ ४ ॥

मृगमदरसवलितं ललितं कुरु तिलकमलिकरजनीकरे
विहितकलङ्ककलं कमलानन विश्रमितभ्रमसीकरे
॥ निज० ॥ ५ ॥

हे कमलके समान मुखवाले श्रीकृष्ण ! रतिके भ्रमसे उत्पन्न

१०२

श्रीगीतगोविन्दम्—

[भाषाटीका-

स्नेदविन्दु से युक्त अर्धचन्द्र के समान मेरे भालपर कलंकोखके
समान कस्तूरीसे सुन्दर तिलक लगाइये ॥ ५ ॥

मम रुचिरे चिकुरे कुरु मानद मनसिजध्वजचामरे ।
रतिगलितेललितेकुसुमानिशिखण्डिशिखण्डकडामरे
॥ निज० ॥ ६ ॥

हे मान को देनेवाले श्रीकृष्ण ! रति के समय शिथिल हुए
मोरपंखके समूहके सदृश सुन्दर कामदेव की पताका के समान
मेरे केशपाश में फूल गूँथिये ॥ ६ ॥

सरसघने जघने मम शम्बरदारणवारणकन्दरे ।
मणिरशनावसनाभरणानि शुभाशय वासय सुन्दरे ॥
॥ निज० ॥ ७ ॥

हे प्राणनाथ ! परमानन्दमय और कामदेवरूपीमदोन्मत्त,
हाथीकी कन्दारारूपी मेरे सुन्दर जघनों पर आप रत्नोंकी करधनी,
वस्त्र और आभूषण पहनाइये ॥ ७ ॥

श्रीजयदेववचसि शुभदे हृदयं सदयं कुरु मण्डने ।
हरिचरणस्मरणामृतनिर्मितकलिकलुषज्वरखण्डने ॥
॥ निज० ॥ ८ ॥

हे भगवद्भक्तों ! भगवान् श्रीकृष्णके ध्यानरूपी अमृतसे
कलियुगी पाप के नाशक, कल्याणप्रद और अलंकार के

समेतम्]

द्वादशः सर्गः

१०३

समान मनोहर जयदेवकवि द्वारा रचित इस गीतकी ओर अपने
अन्तः करणोंको लगाइये ॥ ८ ॥

रचय कुचयोः पत्रं चित्रं कुरुष्व कपोलयो-
र्घटय जघने काञ्चीमञ्च स्रजा कबीरभरम् ।

कलय बलयश्रेणीं पाणौ पदे कुरु नूपुरा—

विति निगदितः प्रीतः पीताम्बररोऽपि तथाकरोत् । १ ।

हे प्राणप्रिय ! आप मेरे स्तनों पर सुन्दर पत्र रचना कीजिये,
गालों पर लतावेल आदि की रचना कीजिए, कमरमें काधनी
पहनाइये, मेरे केशपाश में फूलोंको गूँथिये, हाथों में कड़े
पहनाइये, पैरों में पैजेव पहनाइये, इस तरह राधासे कहे गये
पीताम्बरधारी कृष्णने वैसा ही किया ॥ १ ॥

पर्यङ्कीकृतनागनायकफणाश्रेणीमणीनां गणे

सङ्क्रान्तप्रतिबिम्बसङ्कलनयाविभ्रद्वपुर्विक्रियाम् ।

पादाम्भोरुहधारिवारिधिसुतामक्षणां दिदृक्षुः शतैः

कायव्यूहविचारयन्नुपविताकृतो हरिः पातु वः ॥ २ ॥

शय्यारूप शेषनाग के फणमण्डल के मणियों में प्रतिबि-
म्बित, अनेक वेषको धारण करनेवाले, चरणसेवा करनेवाली
लक्ष्मी को सैकड़ों नेत्रों से देखनेकी इच्छा रखनेवाले, काम
भावयुक्त भगवान् आपकी रक्षा करें ॥ २ ॥

यद्गान्धर्वकलासु कौशलमनुध्यानं च यद्वैष्णवं
 यच्छृङ्गारविवेकतत्त्वरचनाकाव्येषुलीलायितम् ।
 तत्सर्वं जयदेवपण्डितकवेः कृष्णैकतानात्मनः
 सानन्दाः परिशोधयन्तु सुधियः श्रीगीतगोविन्दतः ३

गानविद्यामें जो चतुरता है, श्रीकृष्णचन्द्रजीका जो ध्यान है,
 तथा शृङ्गार रस के वास्तविक स्वरूप की रचना वाले काव्यों में
 जो भगवल्लीला का वर्णन है, उन सबको, श्रीकृष्णमें एकाग्रचित्त
 रखनेवाले पण्डित जयदेवकविकृत गीतगोविन्दसे सीखें ॥ ३ ॥

साध्वी माध्वीकचिन्ता न भवति भवतः शर्करे कर्क-
 शासि । द्राक्षे द्रक्ष्यन्ति के त्वाममृतमृतमसि क्षीर-
 नीरं रसस्ते । माकन्द ! क्रन्द कान्ताधर धरणि-
 तलं गच्छ यच्छन्ति भावम् । यावच्छृङ्गारसार
 स्वतमिह जयदेवस्य विष्वग्वांसि ॥ ४ ॥

जयदेवकवि अपने काव्यकी प्रशंसामें कहते हैं कि, इस
 लोक में जबतक शृङ्गार-रस प्रधान काव्य स्थित हैं, तब तक हे
 माध्वीक ! तेरी चिन्ता व्यर्थ है अर्थात् शृङ्गार रस के काव्य की
 मधुरिमाके सामने तेरी मिठास फीकी है । हे शर्करे (शक्कर)
 तुम इसकी तुलनामें कठिन हो । हे द्राक्षे ! तुम्हें इसके सामने

समेतम्]

द्वादशः सर्गः

१०५

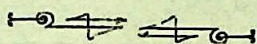
कौन देखेगा ? हे अमृत ! तुम इसके सामने मृत तुल्य हो । हे क्षीर ! तुम्हारा स्वाद इसके सामने पानी सा है । हे माकन्द ! तुम अब रोओ ! हे प्रियतमाके अधर तुम भी पातालमें चले जाओ । अर्थात् मेरे काव्य रसकी तुलनामें उपर्युक्त सभी वस्तुएँ नीरस हैं ॥ ४ ॥

श्रीभोजदेवप्रभवस्य राधादेवीसुतश्रीजयदेवकस्य ।
पराशरादिप्रियवर्गकण्ठेश्रीगीतगोविन्दकवित्वमस्तु ५
इति श्रीगीतगोविन्दे महाकाव्ये जयदेवपरिडितकृतौ
सुप्रीतपीताम्बरौ नाम द्वादशः सर्गः समाप्तः ॥ १२ ॥

माता राधा देवी पिता श्रीभोजदेवके पुत्र श्रीजयदेव कविकी
यह गीतगोविन्द कविता पराशरादिक पूर्व कवियों के कण्ठमें
समर्पित हो ॥ ५ ॥

इतिमोresh्वरशर्मा देशमुख विरचित भाषाटीका-

नुवादित गीतगोविन्दकाव्य समाप्त ।



राधाविनोदकाव्यम् ।



मालीनो वनमाली मालीनो वनमाली

मालीनो बलमाली मालीनोऽवतु माली ॥ १ ॥

विधुसुहृद्विरहानलपीडिता विधुसुहृत्तरलाऽनिलपीडिता ।

विधुसुहृद्द्रदनाऽलिमपीडिता विधुसुहृत्सुगिरोऽक्रिदाडिता ॥ २ ॥

उदयते दयते दयते शशी सखि करैरकरैस्तिमिराकरैः ।

दिशमिमां चर मां चरमारमं कमलकोमललोलविलोचनम् ॥ ३ ॥

कुमुदबन्धुरबन्धुरबन्धुरः स तनुतेऽतनुते तनु ते ततः ।

हिमकरोऽहिमता हि मतां मतां किमनु मां सदृशं सदृशं विधोः ॥ ४ ॥

कमलिनीमलिना मलिनाऽलिना विचलता च लतासुलताशुभाम् ।

विधुतभां विधुतां विधुभानुभिर्नयनयोरनयोनयसीनयोः ॥ ५ ॥

सखि विभाति विभाऽतिविभाऽविभा न सरसी सरसारससारसैः ।

अलिकुलैर्विधुना विधुता धुता विनमदब्जमुखीविमुखीस्थिता ॥ ६ ॥

कुमुदिनीदयितो दयितोनतां निजकरैरकरैर्दहति स्फुटम् ।

यदयमेकपदे विपदेऽभवद्विकचपुष्करिणीहरिणीदृशः ॥ ७ ॥

(१०७)

विधुरिता धुरिता धुरितादहन् विधुरयं जनितो जनितोऽङ्कभृत् ।
 इह तदक्षिगते क्षिगतेऽब्जिनी रविमतिर्विमतिर्निमिमिल सा ॥८॥
 मलयपन्नगपन्नगमण्डलीकविलितो वलितो नु वनानिलः ।
 अदयमङ्गमदङ्ग मदङ्गकं दहति यद् अमयद् अमयन्नयम् ॥ ९ ॥
 अयि रसालवनी नवनीरनीरनवनी नवनीपवनीवती ।
 अलिकुलालिकुलाऽलिकुलाकुला प्रति हि मामहिमामहिमा हिमा १०
 वकुलमाकुलमालि परागितं मधुपरागपरागपरालिभिः ।
 विशदशारदशारदशारदं शशकलङ्ककलङ्ककलङ्कितम् ॥११॥
 नवमशोकमशोकमशोकदे सुरभितारभितालिरतारतम् ।
 सखि समाश्रय माश्रयमाश्रयः कमलिनीमलिनीप इवाऽगतः ॥१२॥
 सखि हिताऽसिमतासि मतात्थ मां नवमशोकमशोकमशोकदाम् ।
 तदिह मामव मामव माममां ब्रज नरिं नवनीरदनीरदम् ॥१३॥
 इति सखीगदिताऽगदिताऽदिता नवनराय वराय वराय वा ।
 इति गिरं कलया कलया कला पटुगिरा मृदुता मृदुतादुता ॥१४॥
 मलयजं तनुतेऽतनुते तनौ सहचरी नलिनी नलिनीदलम् ।
 सुनयनाऽनलदं नलदं च सा तदपि सीदति सीदति बन्धुता ॥१५॥
 समुदितेऽमुदितेऽमुदितेक्षणे हिमकरे मकरेनकरे श्रुती ।
 पिङ्गरवेऽवर वेवरवेति सा हरिणलाञ्छनलाञ्छन लाञ्छना ॥ १६ ॥
 न सहते सहते सह ते सखी तव वियोगवियोगमयोगहृत् ।
 सपदि तां तरुणीं सरणिं मणिं किरतुनामनवं नवनीविजम् ॥१७॥

(१०८)

अथ तया कलया कलया शुभां वनजदामजदामजदासिमान् ।
हरिरगात्तमगात्तमगाच्च सा मुदमतीवमतीवदृशोः स्थितम् ॥१८॥
रामचन्द्रकविना कविनाऽदः पुरुषोत्तमसुतेन सुतेन ।
राधिकाहृदयशोकदमासीद्राधिकाहृदयशोकदमासीत् ॥ १९ ॥
इति श्रीपुरुषोत्तमात्मजजनार्दननन्दनरामचन्द्रकविकृतं
राधाविनोदाख्यं काव्यं समाप्तम् ॥



हर प्रकार की पुस्तक मिलने का पता—
ठाकुरप्रसाद एण्ड सन्स बुकसेलर,
राजादरवाजा, ब्राह्म-कचौड़ीगली, वाराणसी ।

बम्बई प्रेस, वाराणसी ।

हमारे यहाँ की प्रकाशित पुस्तकें :--

स्मृति-पुराणादि ग्रन्थाः

गरुडपुराण भा. टी. ग्लेज	३)००
" " रफ	२)५०
गणेश पुराण	२)००
श्रीमद्देवी भागवत भा. टी.	
बारहो स्कन्ध सम्पूर्ण साँची	४८)००
श्रीमद्भागवत मूल गुटका	
बारहो स्कन्ध	५)००
श्रीमद्भागवत बारहो स्कन्ध	
सम्पूर्ण साँची	३६)००
श्रीमद्भागवत भा. टी.	
केवल दशम स्कन्ध	१२)००
मनुस्मृति भा. टी. ग्लेज	४)५०
शुक्ल यजुर्वेद संहिता ग्लेज	१०)००
" " रफ	९)००
शिवपुराण भाषा बड़ा ग्लेज	१४)००
" " " रफ	१२)००
सुखसागर भाषा सम्पूर्ण ग्लेज	१५)००
" " " रफ	१०)००
" " गुटका	७)००
श्रीमद्देवीभागवत गुटका	
मूल सम्पूर्ण	१२)००

गीता रामायण-महा-

भारतादि ग्रन्थाः

गीता श्रीधरी टीका	३)००
वाल्मीकीय रामायण भा. ग्लेज	१६)००

वाल्मीकीय रामायण भा. रफ	१२)००
" " सुन्दर काण्ड	
गुटका मूल	२)५०
श्रीमद्भगवद् गीता भाषा	
बड़ा अक्षर ग्लेज	३)००
श्रीमद्भगवद् गीता भाषा	
बड़ा अक्षर रफ	२)५०
श्रीमद्भगवद् गीता भाषा	
लाहौरी ग्लेज	१)५०
श्रीमद्भगवद् गीता भाषा	
बड़ा अक्षर रफ	१)२५
श्रीमद्भगवद् गीता भा. टी.	
गुटका माहात्म्य	५)००
महाभारत भा. टी. ग्लेज	
सबलसिंह कृत	२८)००
महाभारत भा. टी. रफ	२०)००
महाभारत सबलसिंह अठारहो	
पर्व दोहा चौपाई में	१०)००
महाभारत सबलसिंह अठारहो	
पर्व दोहा चौपाई रफ	८)००
रामायण सम्पूर्ण ग्लेज	३४)००
" " रफ	२४)००
" मध्यम ग्लेज	१३)००
" " रफ	१०)००
रामायण सटीक गुटका	६)००
" मध्यम मूल	६)००
रामायण किष्किन्धा काण्ड	१३)००
" गुटका मूल आठोकाण्ड ग्लेज	२)३०

(२)

रामायण गुटका मूल आठोकांडरफर)००	एकादशी माहात्म्य भा. टी. रफ २)५०
,, सुन्दर काण्ड गुटका)२१	एकादशी माहात्म्य केवल
महाभारत भाषा गुटका १८ पर्व ५)००	हिन्दी भाषा में १)००
आनन्द रामा. भा. केवल हिन्दी १०)००	कार्तिक माहात्म्य भा. टी. ग्लेज २)५०
गीतगोविन्द भा. टी. १)३०	काशी माहात्म्य बंगला १०) सै.
प्रेमसागर ९० अध्याय ग्लेज ४)००	,, , हिन्दी ८) सै.
,, ,, ,, रफ ३)००	कार्तिक माहात्म्य भाषा १)००
विश्रामसागर भा. टी. ग्लेज १२)००	गया माहात्म्य भा. टी. १)५०
,, ,, रफ १०)००	पुरुषोत्तम मास माहात्म्य
,, मूल ग्लेज ९.००	भा. टी. ग्लेज ३)००
,, ,, रफ ८)००	,, ,, रफ २)५०
भक्तमाल सम्पूर्ण ग्लेज १२)००	पुरुषोत्तममास माहात्म्य भाषा ग्लेज १)५०
,, ,, रफ १०)००	वैशाख माहात्म्य भाषा १)५०
राधेश्याम रामायण सजिल्द	माघमास माहात्म्य भा. टी. ३)
बड़ा ग्लेज ८)००	माघमास माहात्म्य भाषा १)५०
राधेश्याम रामायण छोटा ३)००	रामार्चा माहात्म्य भा. टी. ७५
माहात्म्यादि ग्रन्थाः	श्रावणमास माहात्म्य भा. टी. ४)५०
एकादशी माहात्म्य भा. टी. ग्लेज ३)००	

हर प्रकार की पुस्तक मिलने का पता—

ठाकुरप्रसाद एण्ड सन्स बुकसेलर,

राजादरवाजा, ब्राह्म-कचौड़ीगली, वाराणसी ।

मुद्रक-वम्बई प्रेस, वाराणसी ।

हमारे यहाँ से नीचे लिखी प्रकाशित- पुस्तकें एकबार पढ़कर लाभ उठावें

रामायण मध्यम सटीक १०)	अंग्रेजी हिन्दी मार ३)
बृहद् बूटीप्रचार वैद्यक सचित्र ३)	इन्द्रजाल कौतुकरत्न-
भरथरी चरित्र बड़ा ६ खंड १)	भण्डागार बड़ा ३)
वशीकरण मन्त्र ११)	कुँवर विजयमल ३ २ भाग गढ़-
रामायण भाषाटीक आठो	पर्वतकी लड़ाई सहित संपूर्ण २॥)
काण्ड सम्पूर्ण सबसे बड़ा २६)	कोकशास्त्र बड़ा ३)
राधेश्याम रामायण बड़ा ८)	सिंहासन बत्तीसी १)
बिहुला विषहरी ६ खंड २)	ताता-मैना ८ भाग १॥)
मारवाड़ी गीत संग्रह ५)	घाघभट्टरी की कहावतें १॥)
सोरठी बृजाभार ६६ भाग ६)	मारी-धर्म विज्ञान स्त्री
लचिया रानी का गीत ॥१)	शिक्षा का अपूर्व ग्रन्थ ४)
पतित पतित उपन्यास १)	दृष्टान्त दर्पण अर्थात्
सुखसागर मध्यम संपूर्ण १०)	दृष्टान्त का सागर २)
प्रेमसागर ६० अध्याय ३)	विश्रामसागर भाषाटीका १०)
श्रीमद्भगवद्गीता भाषा	बान्सीकीय रामायण भा. १२)
लाहोरी ग्लेज कागज १॥)	लोरिकायन बड़ा १॥)

हर प्रकार की पुस्तक मिलने का पता—

ठाकुरप्रसाद एण्ड मन्स बुकमेल्स,

राबादरबाजा, मास्त्र—कच्चीड़ीगली, वाराणसी ।

वम्पई प्रेस, वाराणसी ।